मायावी हिरण

जगन्नाथप्रसाद दास

Digitized by srujanika@gmail.com

मायावी हिरण

जगन्नाथ प्रसाद दास

Digitized by srujanika@gmail.com

मायावी हिरण

लघु कथाओं का यह संकलन आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन की विविधताओं उनके मनोभाव, प्रकृति-प्रवृत्ति, व्यवहार, रीतिरिवाज आदि की चित्रावली-सी प्रस्तुत करता है। इसमें आपकी भेंट होगी असंतुलित कवियों, भगवान के स्वयंभू अवतारों, अवांच्छित आत्महत्याओं, महत्वाकांक्षी अभिनेत्रियों, जलती हुई नव-वधुओं, दिवास्वप्नी बाबुओं और दम्भी राजनीतिज्ञों से।

इन कहानियों की विषय वस्तु ज्वलंत सामाजिक समस्याएं हैं जैसे अस्पृश्यता, दहेज, महिलाओं की सामाजिक स्थिति, विधायकों की जिम्मेदारी व पारिवारिक व्यवस्था। कुछ कहानियां अयथार्थवादी या अमूर्त लग सकती हैं पर उनके पात्र वास्तविक जीवन में तथा धरती से जुड़े हुए हैं।

लेखक की कहानियों का हिन्दी में यह प्रथम प्रकाशन है। हिन्दी पाठक इससे निश्चय ही आनन्दित होंगे।

Digitized by srujanika@gmail com

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ / अनुवादक : राजेन्द्र प्रसाद मिश्र / प्रथम संस्करण : १९८३ / मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ / मूल्य : तीस रुपये

MAYAVI HIRAN *by* Jagannath Prasad Das Rs. 30.00

Digitized by srujanika@gmail.com

मित्रा
और
मोना
के लिए

Digitized by srujanika@gmail com

अनुक्रम

मायावी हिरण	६
शब्दभेद	३१
मृत्युबोध	४७
संन्यास का रास्ता	६२
असलियत	८०
संचार	९३
दुःस्वप्न	१०४
दायित्व	११७
खिड़की	१२८
वापसी	१४२
जीवन-मुक्ति	१४८
निर्धारित स्थान	१६८

Digitized by srujanika@gmail.com

मायावी हिरण

रिहर्सल के दसवें दिन मानसी ने साफ-साफ कह दिया, कि यदि सचमुच का हिरण नहीं लाया गया तो वह सीता का रोल नहीं करेगी। मानसी की इस अप्रत्याशित मांग को लेकर दो मत दिखाई दिये। पहला मत, जिसका प्रवर्तक स्वयं नाटक का निर्देशक था, यह था कि मंच पर हिरण की आकृति ही काफी है; क्योंकि नाटक का बहुत कुछ दर्शकों की कल्पनाशक्ति पर भी निर्भर होता है, अतः मंच पर एक जिंदा हिरण लाना, नाट्यकला का अनादर करना होगा। दूसरे पक्ष का मत था कि आधुनिक युग में वास्तविक चीजें, जैसे कोयले की खान में पानी घुसना, गांव में आग लगना आदि दिखलाकर नाटक को दर्शकों के और भी करीब लाया जा रहा है; अतः इस दृष्टि से स्टेज पर एक जिंदा हिरण को एक ओर से दूसरी ओर भागते दिखाना कतई असंगत नहीं होगा। नाटक का लेखक, जो शुरू-शुरू में रिहर्सल में रुचि लेता था, लेकिन बाद में नाटक में तोड़-मरोड़,और काटा-छांटी होते देखकर अब सिर्फ चुपचाप बैठा करता था, मन-ही-मन पहले मत का समर्थन करने पर भी, इस तर्क-वितर्क में अपने को दूसरे मत का समर्थक बतलाता।

काफी वाद-विवाद के बाद संस्था की ओर से 'मायावी हिरण' नाटक करने का फैसला किया गया था। एक पौराणिक कथानक को किस तरह आधुनिक प्रतीकात्मक नाटक में रूपांतरित किया

Digitized by srujanika@gmail.com

जा सकता है, यह नाटक उसका उदाहरण था; या यों कहें कि उदाहरण होने का दावा करता था।

नाटककार का कहना था कि उसने अपने नाटक में सीता को एक रक्त-मांस की नारी के रूप में दिखलाने की कोशिश की है, एवं रामायण की इस मानवीय व्याख्या में सोने का हिरण सेक्स अथवा यौन-प्रवृत्ति का प्रतीक है। निर्देशक को नाटककार की यह बात अर्थहीन लगती थी; इसीलिए वह नाटक को और भी आधुनिक और प्रतीकात्मक बनाने हेतु उसमें मनचाहा तोड़-मरोड़ काटा-छांटी किया करता था। यह बात नाटककार और निर्देशक के बीच मनमुटाव का कारण बनी हुई थी और वे दोनों अभिनेता, अभिनेत्री एवं संस्था के अन्य कार्यकर्ताओं को अपनी-अपनी तरफ खींचने में जुटे हुए थे।

हिरण को लेकर—जो नाटककार के मत में केवल एक प्रतीक मात्र था, इसके अलावा कुछ नहीं—जब दोनों मत अपनी-अपनी चरम सीमा पर पहुंच गये, तब कोई-कोई इसका तटस्थ हल ढूंढ़ने की कोशिश करने लगे। किसी एक ने मंच के पीछे पर्दा तानकर उस पर 'अफ्रिकन सफारी' फिल्म का, दौड़ते हुए हिरणवाला अंश दिखलाने का प्रस्ताव रखा। उस वक्त मानसी निर्देशक को एक कोने में ले जाकर कुछ समझा रही थी।

निर्देशक के समक्ष जब यह प्रस्ताव रखा गया, तो उसने फिल्म को नाटक का प्रधान शत्रु बतलाकर इस प्रस्ताव को एकदम ठुकरा दिया, और कहा कि ऐसी स्थिति में वह भले ही सचमुच हिरण मंगवाएगा, लेकिन फिल्मी हिरण कदापि नहीं। निर्देशक के इस मत ने नाटककार को उलझन में डाल दिया। जब नाटककार ने एक अन्य तटस्थ हल देते हुए, हिरण की खाल से तैयार हिरण का उपयोग करने की राय दी, तो उसकी बात से कोई भी सहमत नहीं हुआ। मानसी की इस मांग ने रिहर्सल के बीच एक

Digitized by srujanika@gmail.com

अस्वाभाविक मध्यांतर डाल दिया था।

हालांकि अभिनय के क्षेत्र में 'मायावी हिरण' मानसी का पहला प्रयास था, फिर भी हरेक स्तर पर उसी के मत को प्रधानता दी जा रही थी। निर्देशक अन्य सभी अभिनेता-अभिनेत्रियों को हेय दृष्टि से देखता था, लेकिन मानसी को हमेशा मानसी देवी कहकर संबोधित करता तथा उससे सम्मानजनक व्यवहार करता, जिसमें मात्र चाटुकारिता ही नहीं बल्कि भय का पुट भी रहता था। दूसरों की अभिनय-क्षमता के लिए जहां निर्देशक ने एक अति उच्च मानदंड निर्धारित कर रखा था, वहीं वह मानसी के अति घटिया अभिनय की बिला वजह प्रशंसा किया करता था। निर्देशक अपने काम में दक्ष था और इसीलिए सभी उसकी इस मनमानी को स्वीकार लेते थे। साथ ही यह बात भी सभी जानते थे कि भविष्य में निर्देशक की एक फिल्म बनाने की आकांक्षा भी थी, मानसी के पति एक जाने-माने उद्योगपति थे, और निर्देशक उनके जरिये अपनी उम्मीदों को साकार करना चाहता था।

बच्चे को बोर्डिंग-स्कूल में भरती करवाने के बाद मानसी के पास जो फालतू वक्त और घुटन रह जाती थी, उसे मिटाने के लिए उसने विभिन्न योजनाएं बना रखी थीं। उसकी सबसे पहली योजना अपना मोटापा कम करना था, और इसके लिए वह कई तरह के खेलकूद में मन लगाती थी। एक प्रसिद्ध टेनिस और बैडमिंटन कोच से क्रमशः पांच और चार सप्ताह का प्रशिक्षण लेने के बाद, आखिर में उकताकर वह किसी फाइव स्टार होटल के हेल्थ-क्लब की सदस्या बनी थी।

लेकिन उसका शरीर उसकी कोशिशों से खिलाफत कर रहा था, और अंत में जब वजनमापी यंत्र के कांटे ने अपने पूर्वनिर्धारित स्थान से खिसकने से जवाब दे दिया, तब मानसी ने कला की ओर ध्यान दिया। उसने तीन महीने तक एक विख्यात चित्रकार से

Digitized by srujanika@gmail.com

तैलचित्र बनाने की शिक्षा ली, और दो महीने तक एक अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त उस्ताद से सितार-वादन सीखा। लेकिन नृत्यकला में माहिर एक दक्षिण-भारतीय गुरु ने उसे दो दिन से अधिक भरत नाट्यम् की शिक्षा देने से इनकार कर दिया। मानसी अब तक शहर की विभिन्न कला-संस्थाओं से गहरे रूप में जुड़ चुकी थी। नाटक उसके लिए एक नया क्षेत्र था, और अब वह अभिनय-कला पर अधिकार करने का निर्णय भी ले चुकी थी।

मानसी की इन योजनाओं में उसका पति जी-जान से सहयोग देता था, क्योंकि इसकी वजह से अनंग की दिनचर्या में से मानसी का दावा बहुत कुछ कम हो जाता था। आजकल मानसी समय-असमय न तो अनंग के दफ्तर में फोन करती, और न ही विभिन्न चीजें खरीदने अथवा उसे साथ लेकर विभिन्न स्थानों पर घूमने जाने को कहती। बीच-बीच में अनंग उसे विभिन्न कला-संस्थाओं से जुड़ने के लिए उत्साहित किया करता, और इसके लिए वह विभिन्न कला-संस्थाओं को दान भी देने से हिचकिचाता नहीं था।

यह जानकर उसे बेहद खुशी हुई कि मानसी ने अभिनय करने का निर्णय ले लिया है; क्योंकि सारे रिहर्सल शाम को ही हुआ करते थे। अपने दोस्तों को घर बुलाकर अपनी इच्छानुसार उनका सत्कार करना अब उसके लिए आसान हो गया था।

अपनी अभिनय-कुशलता पर मानसी को अगाध आस्था थी, और उसे इस बात पर लेशमात्र भी संदेह नहीं था कि अन्य कलाओं की अपेक्षा इस कला में वह सहज ही अपनी निपुणता दिखलाकर प्रसिद्धि हासिल कर सकती है। वह अपनी अब तक की अना-विष्कृत प्रतिभा से अनंग को वाकिफ करवाना चाहती थी, और इसीलिए उसने आज अनंग को रिहर्सल देखने को बुलाया था। किसी कमजोर घड़ी में, अपनी काल्पनिक बोर्ड-मीटिंग की बात

Digitized by srujanika@gmail.com

भूलकर अनंग ने इसके लिए हामी भर दी थी। इस समय वह अपने एक मित्र के घर में सिर्फ तीसरे पेग पर था। घड़ी में समय देखकर वह स्वयं पर खीझ उठा। रिहर्सल के स्थान पर टेलीफोन होता तो वह अपनी बोर्ड-मीटिंग से फोन करके मानसी से कह देता कि उसे पहुंचने में आधा घंटा और विलंब होगा; लेकिन यह संभव नहीं था। एक ही बार में गिलास खाली करके वह मानसी से मिलने निकल पड़ा।

नाट्य-संघ के जिस कमरे में रिहर्सल चल रहा था, वह खूब छोटा और गंदा था। वहां पहुंचकर अनंग ने सबसे पहले जिस कुरूप व्यक्ति को देखा, उसे चौकीदार समझकर रिहर्सल के बारे में पूछा। वास्तव में वह व्यक्ति निर्देशक था और अनंग की ही प्रतीक्षा कर रहा था। वह अनंग को अंदर ले गया, कमरे की दो सही-सलामत कुर्सियों में से एक पर मानसी बैठी हुई थी, और दूसरी कुर्सी जोकि उसके निर्देशक के लिए थी, उस पर अनंग बैठ गया।

अनंग को दिखाने के लिए निर्देशक ने उस शाम के रिहर्सल को पुनः दोहराने का आदेश दिया। हालांकि सभी लोग उस वक्त घर जाने के मूड में थे, लेकिन निर्देशक के तेज मिजाज और अनंग की उपस्थिति की वजह से उन्होंने कोई आनाकानी नहीं की—यहां तक कि नाटककार भी चुप रहा।

तीन पेग ह्विस्की के हल्के-हल्के नशे में अनंग को सारा कुछ सपना-सा लग रहा था। मानसी की पारिचारिका की भूमिका-वाली लड़की और राक्षसी की भूमिकावाली वयस्का भद्र महिला उसे अति सुंदर दिख रही थीं। पात्रों की नपी-तुली गतिविधियों एवं नाटकीय शैली के संवादों ने उसे मोह लिया था, अतः वह ताली बजाते हुए 'वाह! वाह!' करने लगा। इस वक्त सभी लोग अनंग पर खुश थे, और जब निर्देशक ने हिरण विषयक मत-

Digitized by srujanika@gmail.com

भेद उसके सामने समाधान के लिए रखा तो किसी ने कोई आपत्ति नहीं की; हालांकि निर्देशक ने उससे यह बात अवश्य बतला दी थी कि असली हिरण का प्रस्ताव सबसे पहले मानसी ने ही रखा था। वोर्ड-मीटिंगों का सभापतित्व करने में अभ्यस्त अनंग कुछ देर तक आंखें बंद करके उस समस्या पर गहराई से विचार करने का ढोंग करने लगा, फिर आंखें खोलते हुए धीमे से—'रियल इज ब्यूटिफुल'—कहा और उसके वाद जोर से वोला—"सचमुच का हिरण ही ठीक रहेगा!" इस तरह सच और झूठे हिरण के द्वन्द्व में सच की ही जीत हुई।

नाटककार, जोकि संस्था के गठनकर्ताओं में से एक था, ने इस समय परिस्थिति को अपने हाथों से निकलते देखा एवं विरोध करने की कोई गुंजाइश न पाकर सिर्फ—'हिरण मिलना भर चाहिए'—स्वगतोक्ति की। निर्देशक नाटककार पर कड़ी नजर रखे हुए था। वह उसकी स्वगतोक्ति को निर्विरोध नहीं छोड़ना चाहता था। उसने अपना स्वर ऊंचा करते हुए—'मिल जाएगा'—कहा, और उसके वाद अनंग को देखकर—'है कि नहीं?'—पूछा। अनंग उस वक्त 'राक्षसी' की ओर देखकर कई असंगत बातें सोच रहा था; निर्देशक के प्रश्न से उसका ध्यान टूटा और उसने कहा, "हां, मिल जाएगा; मैं इंतजाम कर दूंगा। हिरण की क्या कमी है, चाहे जितने ले लो!"

इस वार निर्देशक ने खुल्लम-खुल्ला नाटककार की ओर उपेक्षा भरी नजरों से देखा। नाटककार, जोकि बगैर किसी काम-धाम के रिहर्सल-कक्ष में बैठा रहता था, उठते हुए यह कहकर वहां से चला आया कि उसे वहुत जरूरी काम है।

'मायावी हिरण' का रिहर्सल नियमित रूप से चलता रहा और मानसी ने अपने अभिनय में अच्छी प्रगति की। नाटककार ने अब रिहर्सल में आना बंद कर दिया था, जिसकी वजह से नाटक

Digitized by srujanika@gmail.com

को अपनी इच्छानुसार परिमार्जित और परिवर्द्धित करने में निर्देशक पर अब कोई प्रतिबंध नहीं था। अब तक उसने मानसी को अपने विश्वास में ले लिया था, और उसे अपनी परिकल्पित फिल्म ट्रिलोजी की बात भी बतायी। रिहर्सल की प्रगति के साथ-साथ, फिल्म की कहानी के विषय में भी मानसी को संक्षिप्त जानकारियां मिलने लगी थीं और वह उससे प्रभावित भी हो चली थी।

निर्देशक मानसी के अभिनय की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करता, और मानसी ने भी उसे 'भावी सत्यजित राय' का सम्मान देना शुरू कर दिया था। थियेटर के बाद फिल्म को ही अपनी कला का अगला माध्यम बनाने के लिए मानसी ने मानसिक रूप से फैसला कर लिया था।

उस दिन रिहर्सल से लौटने के बाद, अनंग वाकई बोर्ड-मीटिंगों में व्यस्त हो गया और नाटक की बात एकदम ही भूल गया। एक दिन अपने उन्हीं दोस्तों के साथ बैठकर ह्विस्की का तीसरा पेग पीते-पीते उसे यकायक 'राक्षसी' की याद आ गयी, और उसने यह निश्चित किया कि आज रिहर्सल से मानसी को खुद लिवा लाएगा। इसी वक्त उसे हिरण की बात भी याद आयी, और उसने फौरन टोनी का नंबर डायल किया। टोनी का नाम भले ही कुछ और था, लेकिन वह इसी नाम से प्रसिद्ध था। हर असंभव को संभव करना उसकी विशेषता थी।

सरकारी दफ्तरों के गोपनीय कागजात की नकल वह पलक झपकते ला सकता था, और ठीक-ठाक कमीशन पा जाने पर निषिद्ध चीजों का लाइसेंस और कोटा भी दिलवा देता था। सरकारी, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में उसकी काफी जान-पहचान थी। उसका दावा था कि उसके लिए कोई भी काम असंभव नहीं है।

Digitized by srujanika@gmail.com

काम के बारे में टोनी बहुत कम सवाल किया करता था। जब अनंग ने उससे हिरण के बारे में कहा, तो उसने अनंग से सिर्फ इतना ही पूछा कि हिरण कितने चाहिए? एक-आध ज्यादा हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, ऐसा सोचकर अनंग ने दो हिरण का ऑर्डर दे दिया। टोनी ने पूछा—"मादा या नर?" इस बात ने अनंग को कुछ दुविधा में डाल दिया, लेकिन उसने कहा—"कोई भी चलेगा!" टोनी ने पूछा—"कब चाहिए?" अनंग ने कहा—"जितनी जल्दी हो सके"···टोनी ने कहा—"डन्!"

उस दिन मानसी को लिवाने जब अनंग रिहर्सल-स्थल पर पहुंचा, तो बाहर कोई उसकी प्रतीक्षा नहीं कर रहा था। वह सीधे अंदर चला गया। रिहर्सल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए उसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। टुटही कुर्सी पर बैठते हुए उसने चारों ओर निगाह दौड़ायी। तीन पेग के बाद देखी हुई सुंदरी स्त्री, आज चार पेग के बाद राक्षसी जैसी दिखाई दी; और नाटक के जिस भाग का रिहर्सल हो रहा था, वह भी उसे बहुत नीरस और उबाऊ लगा। अपना रोल खत्म करके जब 'राक्षसी' उसके पास पड़ी कुर्सी पर आ बैठी, तो पिछली बार अपने दोस्त के घर अनंग ने जो ह्विस्की पी थी, उसके विदेशी होने पर उसे संदेह हुआ।

उसने कभी भी रिहर्सल में न आने की कसम खायी, और मन-ही-मन कई काल्पनिक 'जरूरी कामों' की सूची बना डाली। काफी देर के बाद रिहर्सल खत्म होने पर जब निर्देशक ने उसकी ओर देखा, तब तक अनंग का धैर्य अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था। बगैर किसी 'हलो-हाय' के निर्देशक ने उससे पूछा, "क्या हुआ हिरण का?" अपनी आवाज में भरपूर अवहेलना भरकर अनंग ने कहा, "सही वक्त पर मिल जाएगा!"

दो दिन बाद शाम को, निर्देशक को साथ लेकर मानसी घर

Digitized by srujanika@gmail.com

आयी। उस रोज दफ्तर में दिन भर कार्यव्यस्तता की वजह से अनंग ने घर लौटकर सोचा था कि चैन से विश्राम करेगा। लेकिन काले बादल की तरह वह व्यक्ति कमरे में घुस आया, एवं सबसे आरामदायक सोफे पर बैठ गया। सामान्य रूप से उसको 'हलो' कहते हुए अनंग ने सिगरेट का धुआं छोड़ा और ऊपर की ओर ऐसे ताकने लगा, मानो उस धुएं में अनेक ऐसे रहस्य हैं, जिन्हें तत्काल समझ लेने की आवश्यकता थी। निर्देशक इससे विचलित होने वाला नहीं था। वह सीधे पेय पदार्थों से भरे 'बार' के पीछे जा खड़ा हुआ और बोतलों को टोहने लगा। मानसी के यह कहने पर कि यहां उसे 'रम' नहीं मिलेगी, वह दो गिलासों में स्कॉच डालकर अपनी जगह पर लौट आया और एक गिलास अनंग की ओर बढ़ा दिया। उसका अनौपचारिक व्यवहार अनंग को पसंद नहीं आया, इसलिए उसने कोई दूसरा ड्रिंक लेने का बहाना बना-कर गिलास लौटा दिया और खुद 'बार' के करीब चला आया। निर्देशक इससे भी विचलित नहीं हुआ। उसने एक गिलास गट-गटाकर पी लिया और खाली गिलास मानसी की ओर बढ़ाकर दूसरे गिलास में जुट गया।

अपना गिलास भरते समय अनंग को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था, कि मानसी को निर्देशक के 'रम' पीने की आदत के बारे में कैसे पता चला? इस वक्त उसे मानसी का व्यवहार रत्ती भर भी नहीं सुहा रहा था। वह उस कलूटे-मोटे निर्देशक को किस तरह बेइज्जत करे, इसी बारे में सोचने लगा। किंतु अनंग के हाथों से वह मौका छीनते हुए निर्देशक ने उलटकर उसी से कहा—"कल से रिहर्सल में हमें हिरण की जरूरत होगी।"···उसे बगैर कोई जवाब दिये अनंग टोनी से बात करने के लिए टेलीफोन के पास गया।

टोनी, जो बहुत कम बातें करता था, ने सिर्फ इतना ही कहा, "कल दस बजे, दफ्तर में!" निर्देशक के सामने आकर अनंग ने

Digitized by srujanika@gmail.com

जिस लहजे में हिरण कल भिजवाने की बात कही, उसमें—'अब तुम जा सकते हो'—का इशारा भी था।

किंतु निर्देशक को इन छोटे-छोटे संकेतों की परवाह नहीं थी। वह पूरे दो पैग लेने तक वहीं डटा रहा। उसे प्रसन्न करने की जिम्मेदारी मानसी पर छोड़कर अनंग उन सभी नये रहस्यों का हल ढूंढ़ने में मशगूल हो गया, जो अभी-अभी सिगरेट के धुएं से निकलकर उसके जूते, टेबुल और दीवारों में कैद हो गये थे। अनंग बैलेंस शीट पढ़ने में सिद्धहस्त था। उसने तुलना करके देखा कि इस व्यक्ति को बेइज्जत करके घर से निकालने में जितना आनंद मिलेगा, उससे कहीं ज्यादा आनंद मानसी के प्रतिदिन घर से तीन घंटा बाहर रहने में था। इसलिए वह चुप रहा, और अगले दिन शाम को हिरण भिजवा देने के बाद अपनी जिंदगी के इस काले अध्याय को भूल जाने का उसने निश्चय कर लिया।

अगले दिन ठीक दस बजे टोनी दफ्तर में आ पहुंचा। बहुत कम बातें करने वाला टोनी आज काफी बकबक किये जा रहा था। उसने एक छोटा-सा भाषण दिया, जिसमें वाइल्ड लाइफ नियमावली, एस० पी० सी० ए० आदि पर विस्तृत चर्चा थी, और जिसका सारांश यह था कि हिरण नहीं मिलेगा। यह बात कहते समय टोनी काफी विवश और लज्जित दीख रहा था। उसने अनंग का गुस्सा चुपचाप सह लिया। जाते समय सिर्फ इतना ही बोला, "नहीं, यह संभव नहीं। बंबई से फिल्म-स्टारों को लाना आसान है, लेकिन हिरण कहीं से भी लाना संभव नहीं!"

टोनी के हार स्वीकार करते ही अनंग जान गया कि उसे एक जोखिम भरी जिम्मेदारी से जूझना है। सेक्रेटरी को बुला, उस दिन के अपने सभी कार्यक्रम रद्द करवाकर वह हिरण पाने के बारे में सोचने लगा। टोनी ने उसे सारी असुविधाएं बतलायी थीं—वन्य-जीवन कानून के अनुसार कोई भी व्यक्ति हिरण नहीं पाल सकता।

Digitized by srujanika@gmail.com

चिड़ियाघर में हिरण मिलेंगे, लेकिन वहां से जानवरों को बाहर निकालने की इजाजत नहीं है, आदि।

हिरण और कहां मिलेंगे, यह जानने के लिए अनंग ने वन्य-जीवन विभाग के दफ्तर में फोन किया। मगर उन्हें भी इस बात की जानकारी नहीं थीं; फिर भी उन्होंने उसे दो संस्थाओं के नाम दिये। एक संस्था का दफ्तर उसे टेलीफोन पर तुरंत मिल गया; उनसे हिरण के बारे में पूछा तो उन्होंने उद्देश्य पूछा, एवं थिएटर की बात सुनकर उसके नाम पर मुकदमा चलाने की धमकी दी। उन्होंने उसका नाम जानना चाहा, लेकिन अनंग ने रिसीवर रख दिया।

दूसरी संस्था का टेलीफोन न मिलने की वजह से वह उनका पता ढूंढ़ते-ढांढ़ते खुद वहां जा पहुंचा। शहर के जनाकीर्ण हिस्से में एक छोटे-से कमरे में उस संस्था का दफ्तर था। दफ्तर में सिर्फ एक ही कुर्सी थी, और उस पर विराजमान सज्जन विशेष कार्य-व्यस्तता का ढोंग कर रहे थे। अनंग ने उनसे हिरण के बारे में पूछा। उस व्यक्ति ने उसे कई पुस्तिकाएं पकड़ा दीं। कमरे में और भी कुर्सियां हो सकती हैं—ऐसा सोचकर अनंग ने इधर-उधर निगाह दौड़ायी, लेकिन उस व्यक्ति ने—'दफ्तर नया खुला है'—कहकर अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया। पुस्तिकाओं के पृष्ठ पलटने पर हिरण, कुटूरा, बारहसिंगा, चित्तल इत्यादि हिरण-परिवार की विभिन्न जातियों के बारे में अनंग को काफी कुछ जानकारी मिली—जैसे कि भारत में हिरणों की संख्या कितनी है, किस जाति के हिरण के सींग में शाखा-प्रशाखा होती हैं, आदि।

लेकिन जब अनंग ने यह प्रश्न किया कि थियेटर के लिए हिरण कहां मिलेगा, तो उस भद्र व्यक्ति ने इसके प्रति अपनी अज्ञानता प्रकट करते हुए यह बात दोहरा दी कि दफ्तर अभी नया खुला है···जब अनंग वहां से चलने को हुआ, तब उस व्यक्ति ने

Digitized by srujanika@gmail.com

उससे परिदर्शन-रजिस्टर पर दस्तखत करने को कहा। वास्तव में वह दफ्तर अभी नया ही खुला था, क्योंकि उस रजिस्टर पर अभी तक केवल एक ही दस्तखत था। अपना दस्तखत करते समय अनंग ने यह भी गौर किया कि रजिस्टर का वह पहला दस्तखत टोनी का था।

वहां से बाहर आकर अनंग ने ड्राइवर को छुट्टी दे दी और खुद गाड़ी चलाने लगा। हठात् उसे याद आया कि एक बार शहर के बाहर स्थित कुछ फॉर्म-हाउसों में उसने मोर टहलते देखा था। संभव है, वहां किसी ने हिरण भी पाल रखा हो! ड्राइवर के साथ घर-घर घूमकर हिरण तलाशने के बजाय उसने अकेले जाना उचित समझा। मगर उस इलाके में चार बार चक्कर लगाने के बाद भी अनंग को कुत्ते और मुर्गियों के अलावा अन्य कोई जानवर दिखाई नहीं दिया। आखिरकार बाध्य होकर वह एक मकान के पास उतरा और बाहर खड़े बच्चे से पूछा, "मेरा हिरण खो गया है। क्या तुमने यहां हिरण का बच्चा देखा है?"

अंगुली से इशारा करते हुए बच्चे ने एक मकान की ओर संकेत किया। अनंग दोहरे उत्साह से उस ओर लपका। फाटक पर पहुंच-कर उसने अंदर लॉन की ओर देखा, और वहां एक सुंदर-चितकबरा हिरण का बच्चा देखकर उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। फाटक पर लगी—'कुत्ते से सावधान'—दफ्ती को नजरअंदाज करते हुए वह सीधे अंदर चला गया और कॉलिंग-बैल का बटन दबा दिया। यकायक दो घटनाएं एक साथ घटीं—दरवाजा खोल-कर एक मुछंदर हाथ में बंदूक लिये बाहर निकला, एवं लॉनवाला हिरण का बच्चा कुत्ते की तरह भौंकता हुआ उसकी ओर दौड़ आया। हिरण-परिवार के बारे में हालांकि उसका हाल ही का ज्ञान खूब सीमित था, फिर भी वह इतना तो समझ ही गया कि यह जानवर हिरण नहीं है, बल्कि कोई विचित्र जाति का कुत्ता

Digitized by srujanika@gmail.com

ही है।

अनंग की सुध-बुध अच्छी थी। वह अनायास ही अपने काल्पनिक मित्र 'कैप्टन कुमार' के मकान के बारे में पूछ-ताछ करके वहां से निकल आया।

उस वक्त शाम हो चुकी थी। वह घर की ओर चल पड़ा। मन-ही-मन उस छोटे बच्चे को गालियां देता जा रहा था, और हिरण के बजाय कुत्ते का इस्तेमाल करने के विचार से खीझ रहा था। घर के ड्राइंग-रूम में पहुंचकर उसने देखा कि 'कालापहाड़' उसके सबसे प्रिय सोफा पर जमकर बैठा है और उसके हाथ में गिलास है। नीचे बैठकर मानसी कोई कॉपी अति तन्मयतापूर्वक देख रही थी। अनंग को देखते ही वह उठकर खड़ी हो गयी और रूखे स्वर में बोली, "तुम्हारी वजह से आज रिहर्सल बंद रहा।··· हिरण कहां है ?" अनंग ने कहा, "शो के दिन मिल जाएगा हिरण। अभी रिहर्सल में उसकी क्या जरूरत है ?" मानसी ने नाक फुलाते हुए कहा, "तुम नाटक के बारे में कुछ जानते भी हो ? डग् स्तानिस्लाव्स्की में विश्वास करता है।"

स्तानिस्लाव्स्की कौन है, क्या है—कुछ न जानने पर भी अनंग इतना जरूर जानता था कि यह एक ऐसा शब्द है, जिसके द्वारा थियेटर के लोग अन्य लोगों को अपनी सम्मोहित-परिधि से बाहर रखते हैं। जवाब के तौर पर अनंग भी कह सकता था कि वह पीटर ब्रुकर में विश्वास करता है; लेकिन इस वक्त वह जवाब देने के मूड में नहीं था। निर्देशक की ओर देखे बगैर वह अपना गिलास लिये हुए अंदर चला गया।

निर्देशक ने एक ही बार में आधा गिलास खाली कर दिया, और मानसी के हाथ से उस कॉपी को लेकर देखने लगा, जिसे अब वह शूटिंग स्क्रिप्ट कहने लगा था। कॉपी पर 'पांचाली', जो कि उसकी परिकल्पित फिल्म का शीर्षक था, काटकर 'मानसी' लिखा

Digitized by srujanika@gmail.com

गया था। जिस दिन से मानसी को देखा था, उसी दिन से उसके मन में यह धारणा दृढ़ हो चुकी थी कि सिर्फ वही इस फिल्म की अभिनेत्री बन सकती है। यह बात निर्देशक ने उसे भी बतलायी, और इस बात से मानसी बेहद प्रभावित हुई। जब सारे पन्नों पर 'पांचाली' शब्दों को काटकर उनके स्थान पर 'मानसी' लिखी हुई स्क्रिप्ट निर्देशक ने उसके हाथों में थमा दी, तब मानसी के मन में कोई संदेह नहीं बचा।

वह निर्देशक को और भी अधिक श्रद्धा और सम्मान भरी नजरों से देखने लगी। यद्यपि निर्देशक का चेहरा मासूमियत भरा था, परंतु वह खूब चतुर और चालाक था। उसे मालूम था कि जब तक मानसी उसके चंगुल में है, वह फिल्म बनाने में अवश्य कामयाब होगा। रिहर्सल के बाद वे लोग फिल्म के बारे में बात-चीत किया करते थे, एवं फ्रिज, ओके, शॉट, क्लोज-अप आदि फिल्म संबंधी बोझिल शब्द सुनाकर निर्देशक ने मानसी को चकित कर दिया था। अब वह मानसी देवी नहीं कहता था; और निर्देशक जिसका वास्तविक नाम दुर्गादास था, अब मानसी के लिए सीधा-सादा 'डग्' था।

हिरण पाने के लिए अगले दिन अनंग ने दो नये तरीके अपनाये। अखबार के 'व्यक्तिगत' कॉलम में उसने एक इश्तहार दिया: हिरण चाहिए—द डियर लवर्स क्लब अपना पूरा ब्यौरा देते हुए लिखें; पोस्ट बॉक्स नम्बर इत्यादि। दफ्तर न जाकर वह शहर के सबसे बड़े पशु-चिकित्सालय के सामने अपनी गाड़ी खड़ी करके वहीं डटा रहा। हालांकि पशु-चिकित्सालय नौ बजे खुल जाना चाहिए था, लेकिन चौकीदार ने नौ बजकर सैंतालीस मिनट पर आकर फाटक खोला। इतनी देर तक बैठा-बैठा अनंग बोर हो जाता, लेकिन उसके चारों ओर आ-जा रहे जन-प्रवाह में एक अद्भुत खिंचाव था। वह बिना किसी काम के एक जगह बैठा,

Digitized by srujanika@gmail.com

बाहर के संसार का पहली बार अवलोकन कर रहा था। यह उसके वातानुकूलित दुमंजिले कमरे के अंदर से नीचे रास्ते का वह दृश्य नहीं था, जहां से लोगों को एक विचित्र दृष्टिकोण से देखने पर वे सब बौने लगते थे। इस समय वह लोगों को उन्हीं की ऊंचाई से देख रहा था, जोकि उसके लिए एक संपूर्ण नया अनुभव था। साधारण जीवन-यात्रा में इतने प्रकार के रंग भरे हो सकते हैं, यह अनंग को पहली वार मालूम हुआ।

फाटक खुलने के वाद चिकित्सालय में पहला जानवर दस बजकर बारह मिनट पर घुसा। उसके पहनावे और चाल-ढाल से अनंग ने अंदाजा लगाया कि वह डॉक्टर है। मानो डॉक्टर के आने का समय सबको मालूम था, क्योंकि उसके आने के दो ही मिनट के अंदर रोगियों का तांता लग गया। रोगियों में सबसे अधिक संख्या कुत्तों की थी। मगर जिस रोगी ने चिकित्सालय में घुसने के लिए अपने मालिक को नाकों चने चबवा दिये थे, वह एक गधा था। दस बजकर तैंतालीस मिनट पर एकाएक रोगियों का आना बंद हो गया, और अनंग को प्यास भी लग आयी। करीब कोई ऐसी दुकान नहीं थी, जहां से चिकित्सालय का फाटक दिखाई दे।

इसलिए अनंग गाड़ी से उतरकर रास्ते के किनारे हाल ही में चायवाले के पास गया और एक कप चाय मांगी। एक टूटे गिलास में चायवाले ने उसे जो गरम पानी दिया, उसके स्वाद का अनंग द्वारा पहले पी गयी कई तरह की चायों से कोई संबंध नहीं था। लेकिन अनंग को यह 'स्पेशल चाय' बुरी नहीं लग रही थी, बल्कि उसने चाय वाले के पास कांच के जार में रखे दो सस्ते बिस्कुट भी चाय के साथ खाये। उसी वक्त चिकित्सालय के गेट पर एक तांगे को रुकते देख वह जल्दी-जल्दी अपनी गाड़ी में लौट आया। किंतु तांगे में कोई नहीं था। तांगेवाला तांगे से घोड़ा खोलकर उसे गेट के अंदर ले गया।

Digitized by srujanika@gmail.com

दिन के दो बजे उसने तय किया कि वह अब वहां इंतजार नहीं करेगा, क्योंकि आसपास के लोगों ने अब उसे कुछ संदेह भरी निगाहों से घूरना शुरू कर दिया था। कृत्रिम प्रजनन के लिए आयी गायें, कुत्ते गिलहरियां एवं नेवले तथा उस गधे और घोड़े के अलावा और किसी भी तरह का जानवर अंदर नहीं गया था। रोगियों में हिरण-परिवार के सदस्यों की तो बात ही अलग है, यहां तक कि हिरण के रंग का कोई चितकबरा कुत्ता भी नहीं था। सिर्फ एक जानवर को वह ठीक से पहचान नहीं पाया था। वह जानवर गधों-जितना ऊंचा था और ऊंट की तरह दिखता था, तथा घोड़े की तरह चलता था। यह जानवर हिरण नहीं हो सकता—अनंग ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया, और ठीक दो बजे अपने पहरे की जगह छोड़कर वह घर लौट आया।

बैठक के सबसे आरामदायक सोफे पर निर्देशक विराजमान था। उसके हाथ में 'बियर' का मग था। मानसी नीचे बैठकर बियर पीते हुए, कागज पर कुछ नोट कर रही थी। अनंग को देखकर काफी परेशानी के साथ उठकर निर्देशक ने उसका अभिवादन करते हुए बैठने को कहा, और बियर पीने का निमंत्रण दिया। यदि प्यास न लगी होती तो अनंग अंदर चला जाता; लेकिन वह अपनी प्यास पर काबू न पा सका, और वहीं निर्देशक के बगल में जा बैठा। निर्देशक आज अच्छे मूड में था। वह अनंग से हिरण के बारे में कुछ पूछे बगैर, अपनी फिल्मी योजना के बारे में बताने लगा। अनंग को मानसी से यह सूचना भी मिली कि 'वे लोग' इस फिल्म को बनाने का फैसला भी कर चुके हैं, और निकट भविष्य में अभिनेता और तकनीशियनों को साइन करने बंबई जा रहे हैं।

अनंग के व्यापार में मानसी अपने पिता की ओर से हिस्सेदार थी, और उसे अपना पैसा चोरों में बांट देने की पूरी छूट थी। अब तक यह बात निर्देशक को भी मालूम हो चुकी थी, और इसीलिए

Digitized by srujanika@gmail.com

अनंग ने खामोश रहना बेहतर समझा। वह निर्देशक को उसकी फिल्म बनाने के लिए छोड़ सब कुछ भुला पाता तो खुश होता; लेकिन निर्देशक उसे इतनी आसानी से छोड़ने वाला जीव नहीं था। उसने अनंग से कहा, "हिरण न मिलने तक हमने रिहर्सल बंद कर दिया है। हिरण मिलने पर फिर रिहर्सल शुरू कर देंगे···"

हिरण न मिलने का बहाना बनाकर निर्देशक ने नाटक छोड़कर फिल्म में ध्यान लगाया, और मानसी के साथ घंटों बैठकर अपनी स्क्रिप्ट में और भी फेर-बदल करने लगा। अनंग जानता था कि हिरण न मिलने तक यही क्रम जारी रहेगा। यद्यपि इससे उसके पारिवारिक जीवन में विघ्न पड़ता था, लेकिन वह हिरण पाने में सफल न हो सका। अनंग की परेशानी अब तक मानसी जान चुकी थी, और इस कमजोरी का फायदा उठाकर वह बीच-बीच में अनंग से हिरण के बारे में पूछने लगी थी। उसके हावभाव से अब यह नहीं लगता था कि नाटक की ओर भी उसका कोई झुकाव है। अब हिरण मिलने की उम्मीद प्रायः खत्म हो जाने पर भी—'मिल जाएगा'—कहकर अनंग बात को टाल देता था। लेकिन एक लंबी अवधि बीत जाने पर भी हिरण की तलाश में कोई प्रगति नहीं हो सकी। उसके काल्पनिक 'डिअर्स क्लब' में सिर्फ एक ही चिट्ठी आयी थी, जोकि अनंग के लिए काफी व्यंग्यात्मक थी। चिट्ठी किसी 'रामायण प्रचार सभा' की ओर से आयी थी। वे संपूर्ण रामायण का आयोजन करना चाहते थे, और उसके लिए हिरण कहां से मिलेगा—इस बारे में उन्होंने पूछताछ की थी।

अंत में अनंग को एक अप्रत्याशित सूत्र से हिरण मिल गया। उसके दफ्तर की मेज पर उसके एक मित्र ने 'द बक् स्टॉप्स हिअर' नामक बोर्ड देखा, और कुछ याद करके किसी को फोन करके हिरण के बारे में पूछा। हिरण का नाम सुनकर अनंग चौंक

Digitized by srujanika@gmail.com

उठा। पूछने पर पता चला कि उसका मित्र, जिसने ढेर सारे कुत्ते पाल रखे थे, अब किसी से एक हिरण लाने के चक्कर में था। लेकिन जिस सज्जन के पास हिरण था, वह किसी को अपने पास फटकने तक नहीं देता था। अनंग ने मित्र से अपनी समस्या बतलायी। उसके मित्र ने पुनः उन सज्जन को फोन करके किराये पर देने के बारे में पूछा। इस बार उस व्यक्ति ने इनकार नहीं किया। उसके मित्र ने अनंग को एक पता देकर उस व्यक्ति से किसी भी दिन शाम को मिलने को कहा।

यह शुभ सूचना देने के लिए अनंग ने फौरन घर पर फोन किया, लेकिन मानसी घर में नहीं थी। उसी दिन शाम को, पता तलाशते हुए अनंग हिरण देखने चल पड़ा। शहर की तलहटी में एक संकरी गली में उस आदमी का मकान था। हिरण का शौक रखनेवाले सज्जन का यह मकान अनंग की कल्पना से परे था। यह एक अति जीर्ण-शीर्ण छोटा-सा मकान था। उस दिन बिजली चली जाने की वजह से मकान के अंदर एक मोमबत्ती टिमटिमा रही थी।

अनंग की आवाज सुनकर जो सज्जन बाहर आये, वे भी अनंग की कल्पना से परे थे। पूछने पर पता चला कि वे सज्जन किसी दफ्तर में कोई छोटी-सी नौकरी करते हैं। वे अनंग को अंदर कमरे में लिवा गये और अपनी पत्नी एवं पुत्र से उसका परिचय करवाये।

अनंग ने मकान के रूप में जो कुछ देखा, वह एक छोटी-सी कोठरी भर थी, जोकि उठने-बैठने, सोने, खाने, सभी तरह के काम आती थी और उससे लगा हुआ बरामदा रसोई का काम देता था। इस छोटी-सी कोठरी के घुटन भरे अंधेरे माहौल में बैठकर अनंग ने अपने आने का अभिप्राय बतलाया। उन लोगों ने सोचा था कि हिरण की जरूरत किसी फिल्मी काम के लिए होगी, अतः

Digitized by srujanika@gmail.com

थियेटर की बात सुनकर कुछ उदास जान पड़े। किंतु वे अनंग को हिरण देने को तैयार थे। भद्र महिला ने अपने बेटे से हिरण लाने को कहा।

घर के पिछवाड़े से जिस जानवर को साथ लेकर वह लड़का लौटा, वह सचमुच हिरण है—देखकर अनंग की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने हिरण के सींग, नाखून और कान छूकर अपनी आंखों को विश्वास दिलाया और चैन की सांस ली। अगले दिन आकर हिरण ले जाने की बात तय हुई; लेकिन अनंग को बगैर चाय पिये जाने देने को वह भद्र महिला तैयार न थी। बाहर बरामदे रूपी रसोई में चाय बनाते हुए उसने अनंग को अपने बारे में कई बातें बतलायीं—वे लोग कितने सालों से यहां रहते हैं, हिरण कहां से मिला, उनकी एक बहन की शादी कहां हुई है, उनके बेटे को हिरण पालने का शौक कैसे हुआ, इत्यादि। चाय पीते हुए अनंग ने तीनों को बारी-बारी से देखा। इस वक्त उन लोगों के खामोश रहने पर भी अनंग को लगा, मानो उनके अंदर स्नेह का एक अनवरत संवाद चल रहा है—ऐसा स्नेह जो उस सज्जन की आंखों से उनकी पत्नी की आंखों में और फिर उस लड़के की आंखों में घूम-फिरकर अंत में उसे भी संक्रमित कर रहा था। उसे ऐसा लगा कि इन कुछ ही पलों में वह इस अपरिचित परिवार के खूब करीब आ चुका है।

घर लौटने पर बैठक में मानसी और निर्देशक को न पाकर अनंग खुश हुआ। लेकिन उसकी खुशी क्षणिक थी। बैठक की एयरकंडीशन मशीन खराब होने की वजह से वे दोनों सोने के कमरे में बैठकर शूटिंग-स्क्रिप्ट पर चर्चा कर रहे थे। अनंग ने उन्हें हिरण मिल जाने की सूचना दी; लेकिन यह बात सुनकर निर्देशक ने सिर्फ 'ठीक है'—कहा, और मानसी अपना चेहरा क्लोजअप में देखने के लिए आईने के पास चली गई। अनंग ने निर्देशक से

Digitized by srujanika@gmail.com

कहा कि अब वे रिहर्सल प्रारंभ करें, कल उनके रिहर्सल के समय हिरण पहुंच जाएगा। निर्देशक इसखबर से अधिक खुश नहीं दिख रहा था। अनंग के आ जाने पर मानो उनकी किसी अति गंभीर चर्चा में विघ्न पड़ गया हो, ऐसा मुंह बनाते हुए—'हां, ठीक है'—कहकर निर्देशक वहां से चला आया।

उस दिन रात को अनंग और मानसी के बीच जो झगड़ा हुआ, उसका कारण यह था कि बोर्डिंग-स्कूल में बबलू के पास मानसी को पत्र लिखना था और उसने नहीं लिखा था। अनंग द्वारा बबलू को स्कूल से लौटा लाने की धमकी देने पर मानसी ने उस पर दोषारोपण करते हुए कहा कि वह बबलू का भविष्य बर्बाद करने का षड्यंत्र रच रहा है। आखिर में उस दिन के उनके झगड़े की समाप्ति इस तरह हुई—मानसी ने बंबई चले जाने की धमकी दी, और अनंग एयरकंडीशन बंद होने के बावजूद बैठक में जाकर पीने लगा।

दूसरे दिन अनंग ने सारा समय दफ्तर में बिताया। शाम को दफ्तर से ही हिरण लेता हुआ वह सीधे रिहर्सल-स्थल पर पहुंचना चाहता था। फिलहाल यह काम उसके लिए एक अनावश्यक जिम्मेदारी थी, जिससे वह जितनी जल्दी हो सके, उबरना चाहता था। आज भी उन सज्जन के इलाके में अंधेरा था, लेकिन वह व्यक्ति और उसका बेटा पूरी तैयारी के साथ हिरण को थामे हुए, उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी में घुसने पर हिरण ने थोड़ी-सी आनाकानी की, लेकिन अंत में वे लोग हिरण लेकर रिहर्सल-स्थल पर जा पहुंचे। अनंग वहां पहुंचकर सबको हतप्रभ कर देना चाहता था, किंतु इस समय वहां सिर्फ टूटी कुर्सी के अलावा और कुछ नहीं था। पूछने पर पता चला कि रिहर्सल तो पिछले कई दिनों से बंद है। अपमान, गुस्सा और अशांति से भरकर अनंग नीचे उतर आया, और हिरण वाले सज्जन से क्षमा

Digitized by srujanika@gmail.com

मांगते हुए, ड्राइवर से घर की ओर चलने को कहा।

मानसी घर में भी नहीं थी। नौकर ने सूचना दी कि दोपहर को अपना सूटकेस लेकर एयर-पोर्ट गयी थीं, फिर नहीं लौटीं। अनंग ने टोनी को फोन करके, उसी रात की फ्लाइट से बंबई के लिए टिकट बनवाकर एयर-पोर्ट पर उसकी प्रतीक्षा करने को कह, अपना ब्रीफकेस लेकर बाहर चला आया। वे सज्जन और उनका बेटा गाड़ी में बैठे थे। हिरण छटपटा रहा था और वह लड़का उसे पुचकारता जा रहा था। उन्हें घर छोड़ता हुआ अनंग सीधे एयर-पोर्ट जाने की सोचकर गाड़ी में जा बैठा।

जब वे लोग पुनः उस संकरी गली में पहुंचे, तो बिजली आ चुकी थी। भद्र महिला बाहर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने उन सबका इस तरह से अभिवादन किया, मानो वे लोग काफी अरसे के बाद मिल रहे हों। वे हिरण के रिहर्सल की बात सुनने को व्याकुल थीं, लेकिन रिहर्सल न होने की बात सुन वे काफी दुःखी हुईं। घर लौटकर अब तक चुप हिरण में यकायक स्फूर्ति आ गयी और वह छलांगें भरने लगा। भद्र महिला चाय बनाने जा रही थी, किंतु अनंग के मना करने पर वे सज्जन उसके लिए दुकान से शीतल पेय लाने चले गये। उस महिला ने अपने बचपन में खेले एक असफल नाटक की बात बतलायी, एवं 'कल से फिर रिहर्सल शुरू हो जाएगा'—कहकर दिलासा दिया। वे सज्जन शीतल पेय लेकर लौट आये और उन्होंने हिरण को कटोरी में तथा दूसरों को गिलास में पीने को दिया। इस समय अनंग बुरी तरह थक चुका था और पीते समय पुनः उनकी ओर देख रहा था। उस सज्जन ने अपने हिरण के शांत स्वभाव के बारे में कुछ कहा; महिला को अपने कुत्ते के मरने की बात याद आयी, और लड़के ने जाकर हिरण को अपनी बाहों में भर लिया। प्लेन का समय हो रहा था। इसलिए अनंग ने गिलास रखकर उठना निश्चित किया।

Digitized by srujanika@gmail.com

महिला ने कहा, "आप हमारे यहां खाना खाकर जाइएगा।" उन सज्जन ने कहा, "क्यों नहीं !" और लड़का अनंग की सह-मति की प्रतीक्षा में हिरण को छोड़कर उसकी ओर देखने लगा। अनंग ने पुनः उन सभी के चेहरों की ओर देखा। पारिवारिक आनंद का वैद्युतिक मायावी प्रवाह, जो इस कमरे की चारों दीवारों से टकराकर लोगों समेत कुर्सी, टेबुल और हिरण का स्पर्श करता हुआ सारे कमरे में फैल चुका था, उसके शरीर को भी छू गया। इस पल अनंग मानसी, निर्देशक, मायावी हिरण, वातानुकूलित दफ्तर, बैलेंस-शीट, टोनी, सबको भूल गया। वह कुर्सी पर और भी आराम से बैठता हुआ बोला, "अच्छा ठीक है।"…

Digitized by srujanika@gmail.com

शब्दभेद

कॉलेज के दिनों से ही हम लोगों ने यह जान लिया था कि एक-न-एक दिन भवनाथ जरूर पगला जाएगा। वह तब भी कविताएं लिखा करता था और अपने आपको गहरे प्यार में डूबा हुआ महसूस करता था। यह जरूर है कि कॉलेज में पढ़ते वक्त सभी लोग कविताएं लिखते हैं और अपने को प्यार में डूबा हुआ महसूस करते हैं; किंतु भवनाथ हर चीज में हम सबों से काफी गंभीर था और बहुत बातें किया करता था। कॉलेज के पास की चाय की दुकान पर, उसकी बातें सुनते-सुनते उकताकर सबके चले जाने के बाद भी वह दुकान के मालिक को अपनी बात सुनाता रहता था। कॉलेज में उसका कोई जिगरी दोस्त न होने पर भी भवनाथ ने सब से एक-सा संबंध बना रखा था।

भवनाथ की कविता लिखने की सामर्थ्य पर मुझे कॉलेज के दिनों में ज्यादा आस्था नहीं थी। भवनाथ अद्‌भुत कविताएं लिखा करता था एवं उसकी कविताएं कहीं छपती नहीं थीं, इस पर आश्चर्य होने-जैसी कोई बात भी नहीं थी। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है, जिस दिन हाथ में एक पत्रिका लिए हुए भवनाथ तूफान की तरह चाय की दुकान में हमारे पास आया और अपनी प्रथम प्रकाशित कविता हमें दिखलाने लगा। उस वक्त दुकान में अच्छी-खासी भीड़ थी। हम चार लोग जिस टेबुल पर बैठे थे, उसी के करीब एक कुर्सी खींच लाया और उस पर बैठकर भवनाथ

Digitized by srujanika@gmail.com

ने उस दिन अपनी प्रथम प्रकाशित कविता हम लोगों को सुनायी। कविता का शीर्षक था—"आरोह-अवरोह" और कविता की लम्बाई थी सिर्फ छः पंक्तियां :

घास बरगद
चींटी हाथी
मनुष्य ईश्वर ।।
ईश्वर मनुष्य
हाथी चींटी
बरगद घास ।।

यदि यह कविता किसी प्रसिद्ध पत्रिका में न छपी होती, तो शायद हम भवनाथ के इस काव्यात्मक प्रयास को हंसी में उड़ा देते—उसकी अन्य सभी बातों की तरह। किंतु उस वक्त वह कॉलेज का एकमात्र प्रकाशित कवि था, इसलिए हम सब को उसकी बातें सुननी पड़ीं। इस छोटी-सी कविता के बहाने वह हमें यह समझाने लगा कि एक कविता के लिए कितनी साधना करनी पड़ती है। उदाहरण के तौर पर, भवनाथ ने समझाया—इन छः पंक्तियों के पीछे उसे किस तरह छः महीने लगे थे; यह आरोह किस तरह सिर्फ घास से बरगद और चींटी से हाथी ही नहीं, घास से चींटी और चींटी से मनुष्य भी है। इस आरोह के साथ डारविन के नैचुरल सिलेक्शन का सिद्धांत किस तरह अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, यह बात कहना भी भवनाथ भूला नहीं था। और अंत में उसने इलियट, पाउण्ड आदि का उदाहरण देते हुए 'अच्छी कविता क्या है' से संबंधित एक छोटा-सा भाषण भी दिया था।

इस बार उसकी बातों को किसी ने भी हंसी में नहीं उड़ाया; और मैं सोचता हूं, हम लोगों में से जो लोग भी प्रतिष्ठित कवि होने का सपना देख रहे थे, उनमें से कोई-कोई तो ईर्ष्यान्वित भी हो गए थे। चाय पीने के बाद हम सब उठने लगे। इतने में

Digitized by srujanika@gmail.com

दुर्भाग्यवश हममें से कोई पूछ बैठा—चींटी का च ह्रस्व होगा या दीर्घ ? मानो भवनाथ इस प्रश्न के लिए तैयार था। उसने अपने झोले से (कहने की आवश्यकता नहीं कि हम लोगों में भवनाथ ही एकमात्र कवि था, जोकि कवि की तरह कपड़े पहनता था और कंधे पर झोला लटकाता था) एक शब्दकोश निकालकर उसमें दिखा दिया और प्रमाणित कर दिया कि उसके द्वारा लिखी गयी वर्तनी ही शुद्ध है। इसके अलावा उसने इस बात की सफाई भी दी कि चींटी के स्थान पर चींटी के अन्य पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग की गुंजाइश होने पर भी, उसने क्यों चींटी शब्द का ही प्रयोग किया है।

इस कविता के प्रकाशित होने के बाद से वह अपने आप को एक प्रतिष्ठित लेखक समझने लगा और दाढ़ी बढ़ाने लगा। हालांकि बहुत दिनों तक उसकी अन्य कोई कविता नहीं छपी, फिर भी वह कॉलेज में कवि के रूप में स्वीकृति पा चुका था। अब वह बात-बात पर थैले से शब्दकोश निकालता था, एवं विभिन्न शब्दों के अर्थ और प्रयोग को लेकर तर्क-वितर्क करता था। कोई इस विषय में पूछे तो वह उल्टा तर्क देता था : शब्द ही तो ब्रह्म है! एवं बाइबिल का कथन उद्धृत करता था : सबसे पहले सिर्फ शब्द ही था, यही शब्द ईश्वर में बदल गया।

फाइनल परीक्षा के बाद जब हम लोगों ने अंतिम बार कॉलेज छोड़ा, तो आपस में एक-दूसरे का पता ले-दे लेने पर भी, ज्यादा दिनों तक कोई किसी के साथ सम्पर्क नहीं बनाए रख सका। इसके बाद नौकरी पाकर सब इधर-उधर हो गये। मुझे एक दूसरे शहर में नौकरी मिली। बीच-बीच में पत्र-पत्रिकाओं में मैं भवनाथ की कविताएं देखा करता था, और उसी से अंदाजा लगा लिया था कि भवनाथ भी कहीं नौकरी वगैरह कर रहा होगा और बीच-बीच में शौक के लिए कविताएं लिखता होगा। उसकी कविताएं

Digitized by srujanika@gmail.com

मेरी समझ से बाहर थीं, एवं भवनाथ को पहले से जानने के कारण मैं बीच-बीच में यह सोचा करता था कि पाठकों को मूर्ख साबित करने के लिए वह इस तरह की कविताएं लिखता है।

छुट्टियों में जब मैं घर आया करता था, कुछ पुराने मित्रों से कभी-कभार मुलाकात हो जाया करती थी, और उन्हीं से भवनाथ के बारे में भी थोड़ा-बहुत सुनने को मिल जाता था। उस वक्त भवनाथ एक अखबार के ऑफिस में काम करता था और सभी उसे कवि समझते थे। एक बार कौतूहलवश मैंने उसके ऑफिस में फोन किया, और भवनाथ मेरी आवाज सुनकर खुश हुआ। उसी दिन शाम को हम लोगों ने अपनी उसी पुरानी चाय की दुकान में मिलना तय किया।

जब मैं वहां पहुंचा, भवनाथ अभी नहीं आया था। हालांकि चाय की दुकान ठीक पहले की तरह थी; किंतु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह और भी संकीर्ण और गंदी हो गई है। मेरी यह अनुभूति अपने प्रसारित दृष्टिकोण की वजह से हो रही है कि नहीं—यह सोच ही रहा था कि भवनाथ आ पहुंचा। चाय का आर्डर देकर भवनाथ ने बताया कि वह इसलिए देर से पहुंचा, क्योंकि एक शब्द को लेकर संपादक से उसका झगड़ा हो गया था। यह बात सुनकर मुझे ऐसा लगा, मानो शब्द के तात्पर्य को लेकर वह पुनः एक भाषण देगा। किंतु उस वक्त तक भवनाथ के दिल से संपादक के साथ झगड़ेवाली बात शायद गयी नहीं थी। वह चुपचाप बैठा रहा। इस बार मैंने उसे अच्छी तरह देखा; वह ठीक पहले की तरह ही था—ठीक वैसा ही कविनुमा और पगला-सा।

अपने अन्य पुराने दोस्तों से मिलने पर हम लोग आपस में अपने बच्चों की पढ़ाई, चीजों की कीमत और अपने स्वास्थ्य इत्यादि के बारे में बातचीत करते थे। किंतु मैंने एकमात्र भवनाथ को ही देखा, जो ठीक पहले की ही तरह था। उसमें कोई मानसिक

Digitized by srujanika@gmail.com

परिवर्तन भी नहीं हुआ था, क्योंकि उसने पुरानी बातों से संपर्क काटा नहीं था।

चाय-दुकान का मालिक—जिसे आठ वर्षों के वाद भी मैंने पहचान लिया था, किंतु वह मुझे नहीं पहचान पाया था—वह भवनाथ के पास आकर उसका कुशल-क्षेम पूछने लगा। भवनाथ दु:खी-सा सिर हिलाकर बोला—हर रोज उसकी इच्छा होती है यहां आने को, किंतु रोजाना देर हो जाती है। उसकी वात सुनकर मैंने सोचा, शायद वह किसी दायित्वपूर्ण काम में है। जब मैंने उससे उसके ऑफिस के बारे में पूछा, उसने अपने पॉकेट से एक मैग्निफाइंग ग्लास निकालकर मुझे दिखाया। मैं उससे उसकी आंखों के वारे में पूछने जा ही रहा था, कि भवनाथ ने उस कांच को अपने पॉकेट में रख लिया और थैले से एक शब्दकोश निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया। अक्षर खूब छोटे-छोटे होने की वजह से मुझे पढ़ने में परेशानी हो रही थी। किंतु मैंने देखा, भवनाथ अनायास ही उन्हें पढ़ गया। इसके बाद उसने मुझे बतलाया कि अखबार ऑफिस में उसका मुख्य काम है प्रूफ देखना। और प्रत्येक शब्द को अच्छी तरह देखना हो तो खाली दृष्टि ही पर्याप्त नहीं है, हरेक शब्द को अन्य शब्द से अलगाकर उसे सूक्ष्मता के साथ देखना पड़ता है।

चाय पीने के बाद हम दोनों अपने पुराने कॉलेज के लॉन में जा बैठे। मैंने अनुभव किया कि मैं अपने आपको इस पुराने परिवेश में ठीक से खपा नहीं पा रहा हूं; किंतु भवनाथ पालथी मारकर खूब आराम से घास पर बैठ गया और मुझसे मेरे बारे में सारी बातें पूछने लगा। अपनी नौकरी की प्रगति और पत्नी तथा परिवार का एक विस्तृत विवरण देने के बाद जब मैंने उससे उसके बारे में पूछा, उसने संक्षेप में उत्तर देते हुए कहा—जिस तरह कॉलेज के दिनों में अकेला रहता था, अब भी अकेला हूं। जब

Digitized by srujanika@gmail.com

कभी समय मिलता है, कविताएं लिखता हूं। उसने मुझे अपनी कविताओं की कॉपी देखने को दी। अपनी उस पुरानी आरोह-अवरोह कविता के बाद वह अन्य बहुत-सी कविताएं लिख चुका था। यद्यपि उसके कवित्व के बारे में मेरी धारणा अच्छी नहीं थी; फिर भी मैंने कहा—अच्छी बात है, लिखने का अभ्यास तो बनाए हुए हो! उसने मुझसे उलटकर पूछा—आजकल कविता-फविता पढ़ते हो न? मैंने कहा—हां, यों ही कभी-कभार देख लेता हूं। भवनाथ ने अपनी कविता की कॉपी मुझसे वापस लेकर फिर से संभालकर थैले में रख ली और दुःख के साथ च्-च् किया। मैंने सोचा, अब भवनाथ का भाषण शुरू होगा—और वही हुआ।

और थोड़ा अच्छी तरह पालथी मारकर बैठते हुए भवनाथ ने कहा—सिर्फ नजर भर दौड़ा देने से तो पढ़ाई हो नहीं जाती! कविता पढ़ते वक्त हरेक शब्द को बारीकी से देखना पड़ता है। अपनी बात पर जोर देने के लिए इस बार वह हाथ में लिये हुए मैग्निफाइंग ग्लास को हिलाते हुए बोला—प्रत्येक शब्द को, पूरे वाक्य को पढ़ने पर भी कोई फायदा नहीं। जैसे 'हैमलेट' में हैमलेट अपनी मां से कहता है—यू आर योर हजबैंड्स ब्रदर्स वाइफ! खूब सीधी-सी बात है, और प्रत्येक शब्द अति साधारण हैं—तुम अपने पति के भाई की पत्नी हो। किंतु पूर्वापर संगीत से ये शब्द किस तरह खतरनाक हो सकते हैं, देखा न तुमने? ये कुछ शब्द अपनी मां को उसकी आत्मा पहचानने को कह रहे हैं, एवं उसे उसकी निर्बोधता, उसके पाप और उसके जघन्य व्यवहार को लेकर आगाह कर रहे हैं। कुछ देर खामोश रहने के बाद भवनाथ ने कहा—अर्थ ढूंढ़ने के लिए कई बार हमें शब्द के भीतर से होकर बाहर की पृथ्वी पर भी जाना पड़ेगा···

भवनाथ चुप रहा, और इसी बीच मैं उसके दार्शनिक भाषण

Digitized by srujanika@gmail.com

को हृदयंगम करने की कोशिश करने लगा। अंत में मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि संभव है, शेक्सपियर-जैसे रचनाकार की रचनाओं में शब्द के बाहर उसका अर्थ निहित हो। किंतु मामूली कविता, जैसे भवनाथ की आरोह-अवरोह, उसमें भला गूढ़ अर्थ और क्या होगा ?

बहुत दिनों बाद जाकर मुझे यह मालूम हुआ कि मेरी यह धारणा गलत थी। बातचीत के दौरान भवनाथ ने मुझसे कहा था—एक दिन ये शब्द ही आग बनकर सब कुछ स्वाहा कर देंगे। किंतु भवनाथ की कविताओं से चिनगारी निकलकर समाज के अन्याय और अत्याचार रोकने में ईंधन का काम करेगी, इसमें मुझे बहुत संदेह था। जब मैंने यह सुना कि कविता के लिए भवनाथ को जेल जाना पड़ा, मैं समझ गया कि कहीं-न-कहीं कोई गलतफहमी हो गई है। बाद में मुझे पता चला कि भवनाथ को अपनी आरोह-अवरोह कविता के लिए ही जेल जाना पड़ा था, यदि सही रूप से कहा जाय तो आधी कविता के लिए। उस वक्त मैं बहुत दूर था, इसलिए पूरी सूचना न पाने पर भी, इस बारे में जो कुछ भी जान पाया था, उसका मर्म इस तरह है—दस-बारह साल पहले कविता लिखते वक्त भवनाथ ने यह सोचा भी नहीं था कि सुदूर भविष्य में हाथी चिह्न लेकर कोई उम्मीदवार चुनाव लड़ेंगे, और उनके विरोधी दल के उम्मीदवार उनकी आकांक्षाओं की दुष्करता साबित करने के लिए 'आरोह' कविता का हवाला देंगे। इसी वाद-विवाद में भवनाथ का नाम भी आया। हाथी चिह्न के उम्मीदवार ने सोचा कि यदि चुनाव में भवनाथ ने उनका पक्ष लेकर एक इश्तहार निकाल दिया, तो उनका काम आसान हो जाएगा। किंतु भवनाथ ने उनकी एक न सुनी, और अन्त में झुंझलाकर उसने खुद हाथी चिह्न के उम्मीदवार को एक कड़ा-सा जवाब लिखते हुए कहा कि उसे जो कुछ भी कहना था, उसने

Digitized by srujanika@gmail.com

अपनी कविता में कहा है, एवं उस बारे में उसे और कुछ भी नहीं कहना है। भवनाथ का दुर्भाग्य था कि चुनाव में हाथी ही विजयी हुआ और कुछ दिनों बाद आपातकालीन परिस्थितियों की ओट में भवनाथ को जेल जाना पड़ा।

जब मेरी मुलाकात भवनाथ से दुबारा हुई, मैं बदली होकर अपने पुराने शहर में आया था और भवनाथ जेल से छूट चुका था। मेरे सुनने में आया कि चुनाव-मुकदमे में हाथी वाले नेता के हार जाने के कारण ही भवनाथ का जेल से छूटना संभव हुआ था। हाथी के हारने की खुशी में जब विरोधी दल ने भवनाथ की कविता के बाकी आधे 'अवरोह' हिस्से को प्रयोग करना चाहा, तो भवनाथ ने उन्हें भी साफ मना कर दिया। जेल जाने पर उसकी नौकरी चली गयी थी। जेल से लौटने पर बड़ी मुश्किल से उसे पुरानी नौकरी दुबारा मिली थी। जेल से लौटने के बाद भवनाथ काफी प्रसिद्ध हो चुका था। उसकी कविताएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी थीं, एवं कवियों के बीच उसका नाम जरूर गिना जाता था।

मैंने फोन किया तो उसने मुझे कॉलेज की उसी चाय की दुकान पर मिलने को कहा। तब तक मैं अपनी नौकरी में कुछ और ऊंचे ओहदे पर पहुंच चुका था, इसलिए उस चाय की दुकान पर जाने में कुछ संकोच-सा हो रहा था। अंत में मैंने उसे अपने घर आने को कहा। किंतु भवनाथ अपने घर में अकेला है, एवं उसके घर में बातचीत करने में सहूलियत होगी, इसलिए उसने मुझे अपने घर बुलाया। शाम के वक्त, अपनी गाड़ी खूब दूर खड़ी करके, जब छोटी-छोटी गलियों से होकर मैं पूछता-पाछता उसके घर पहुंचा, तो वह मेरा इंतजार कर रहा था। उसके छोटे-से कमरे में ढेर सारी किताबें इकट्ठी थीं। खाट के एक हिस्से से किताबें हटाते हुए उसने मेरे बैठने के लिए जगह बनायी। जब मैंने उसके जेल जाने के बारे में पूछा; उसने मुझे अति सहज भाव से जवाब दिया

Digitized by srujanika@gmail.com

कि जेल जाने को लेकर उसके मन में किसी भी तरह की कोई ग्लानि नहीं है। बल्कि उसने यह कहा कि जेल में उसे अपनी मानसिक स्थिति को एकाग्र करने का अवसर मिला था, जिसके कारण आज वह सोचता है कि अब और भी अच्छी कविताएं लिख सकेगा···

मेरे लिए चाय बनाने को वह कोने में रखे स्टोव के पास गया। मैं समझ गया कि वह अपना गुजारा करने में स्वयं सम्पूर्ण है। मैंने यह भी गौर किया कि भवनाथ कुछ ज्यादा गंभीर हो गया है। उसके चेहरे, चाल-चलन और बातचीत से ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह बौद्धिक-स्तर की एक ऊंचाई पर पहुंच चुका है। कॉलेज के दिनों का वह भवनाथ जो परिहास का केन्द्र था, इस भवनाथ से संपूर्णतः अलग था; और अब मुझे उसकी 'आरोह-अवरोह' कविता हास्यास्पद नहीं लग रही थी। मानो उसके नये व्यक्तित्व ने उसके समूचे अतीत को भी एक नये रंग में रंग दिया हो।

जब चाय का पानी खौलने लगा, मैंने भवनाथ से पूछा—क्या वाकई तुम यह सोचते हो कि शब्दों के माध्यम से क्रांति संभव है? गिलास में चाय डालते हुए उसने कहा—तुम तो साले, स्टाबलिसमेंट के कुत्ते हो, तुम क्या खाक समझोगे! भवनाथ के मुंह से अपनी सरकारी नौकरी पर ऐसा आक्षेप सुनने को मैं प्रस्तुत न था। हाथ में ली हुई किताब गुस्से में फेंकते हुए मैं उठ खड़ा हुआ।

भवनाथ ने चाय का गिलास मेरे करीब रखा, और मेरा हाथ पकड़कर खाट पर बिठा दिया। निर्लिप्त भाव से हंसते हुए उसने मुझसे कहा—देखा न तुमने, दो-चार असंलग्न शब्द एक व्यक्ति को किस तरह गुस्सा करवा देते हैं? हालांकि मुझे सहज होने में काफी समय लगा था, किंतु भवनाथ ने बहुत ही आसानी और सहजता से अपनी बात मुझ तक पहुंचा दी थी। जब वह मुझे शब्दों की क्षमता के बारे में समझाने लगा, तो एक मिनट पहलेवाली बात मैं

Digitized by srujanika@gmail.com

भूल गया, और अब भवनाथ के प्रति मेरे मन में श्रद्धा पैदा हो गयी थी।

शब्द एक अस्त्र है—भवनाथ ने मुझे समझाया—उसे जो जितनी सफलता के साथ प्रयोग कर सका, वह उतना ही क्षमताशील होगा। 'एलिस इन द वंडरलैंड' में हंप्टी डंप्टी ने क्या कहा था? जब मैं किसी शब्द का प्रयोग करता हूं, मैं जो चाहता हूं—शब्द वही सूचित करता है, न कुछ अधिक न कम! किंतु कितने लेखक हैं जो ऐसा कह सकते हैं? मैं एक लड़की को चाहता हूं, और उसे पत्र लिखकर अपना प्रेम जाहिर करता हूं। परंतु मेरी लाख कोशिश के बावजूद, मेरी चिट्ठियों से उस लड़की को अब तक यह विश्वास नहीं हो पाया है कि मैं वाकई उससे प्यार करता हूं। इससे क्या जाहिर होता है? इससे साफ जाहिर है कि शब्दों पर मेरा कोई जोर नहीं चलता…

इस बात के बाद मैंने भवनाथ से पूछा—कॉलेज में पढ़ते वक्त तुम जिस लड़की को चाहते थे, क्या हुआ उसका? भवनाथ एकाएक गंभीर होते हुए बोला—हां, तुम्हें सारी बातें बताऊंगा; पर और किसी दिन। अच्छा किया, पुरानी बात याद दिला दी—वरना आजकल कुछ याद ही नहीं आता! मेरी कविताओं में उसकी अमूर्त छाया ही पड़ती है, उसकी याद अब नहीं आती।…

उस रात मैं वहां से चला आया। पता नहीं, उससे वह बात पूछना ठीक था या नहीं! ऐसा लगता है, शायद उस दिन भवनाथ ने बिना कुछ खाये-पीये, उनींदे रहकर पुरानी बातों को याद किया होगा; कारण, मेरे आते वक्त तक वह पूरी तरह अन्यमनस्क हो चुका था। मैंने यह महसूस किया कि इस बीच मैं भवनाथ के प्रति काफी श्रद्धाशील हो चला हूं। इस बीच मैंने भवनाथ का प्रकाशित कविता-संग्रह भी लाकर पढ़ा। उसमें से उसकी पहले की कुछ कविताएं तो मेरी समझ में आयीं, परंतु बाद में लिखी गई

Digitized by srujanika@gmail.com

कविताएं मेरी समझ से बाहर थीं।

कुछ रोज बाद मैंने उसके घर जाकर, उसकी कविताओं को समझने की कठिनाई के बारे में पूछा। उस रोज उसका मिजाज खूब अच्छा था, उसने यह भी कहा कि यदि तुम्हारे पास समय हो तो दो-चार घंटा बैठो, सब समझा दूंगा। मैं बैठ ही रहा था कि उसने कहा—नहीं, आज बाहर चलकर बैठते हैं। कमरे में ताला बंद करके, दो-चार अंधेरी गलियों को पार करते हुए अंत में हम दोनों जहां पहुंचे, वह एक सुनसान जगह थी, जहां एक पुराना तालाब था। वहां और कोई नहीं था, बल्कि चारों ओर पेड़ होने की वजह से बाहर का उजाला भी वहां नहीं पहुंचता था। टॉर्च की रोशनी में भवनाथ ने तालाब के किनारे एक टूटी सिमेंट की बेंच दिखायी, और उसी पर हम दोनों बैठ गए। टॉर्च बंद कर देने पर फिर से अंधेरा हो गया था। भवनाथ ने कहा—घबराओ मत, कुछ देर बाद चांद निकलेगा।

उसके बाद भवनाथ चुप रहा। अपने कार्यव्यस्त जीवन में मेरे लिए यह एक नया अनुभव था। मील भर दूर अपनी कार खड़ी करके, एक कवि के साथ इस तरह यहां पोखर के किनारे बैठकर चांद के उगने की प्रतीक्षा करना, मेरे लिए एक अजीब-सी अनुभूति थी। इस वीरान सूनेपन में बैठकर मैंने भवनाथ की कविताओं के बारे में सोचा। उसकी कविताओं की असंलग्न पंक्तियां मेरे सिर में घुसने लगीं। मुझे लगा, मानो वे सम्पूर्णत: असंलग्न नहीं हैं; उनके आपस में जड़ित होने में एक गहरा अर्थ निहित है। मैं एक ऐसी स्थिति में था, जहां कि घास, बरगद, चींटी और हाथी—सब स्वयं संपूर्ण और सार्थक थे।

खामोशी तोड़ते हुए भवनाथ ने बात शुरू की। अपनी कविता की जटिलता की बात न कहकर वह अपने पुराने प्यार की बातें कहने लगा—वह लड़की तुम्हें याद है? साइंस पढ़ती थी—

Digitized by srujanika@gmail.com

भवनाथ ने मुझसे पूछा। इतने सालों बाद मैं उस लड़की को याद नहीं कर पा रहा था; किंतु मैंने अपने मन में कॉलेज के समय का एक चेहरा चुन लिया था, जो शायद उस लड़की का नहीं था। मैं उसी काल्पनिक लड़की के चेहरे के साथ भवनाथ के चेहरे को मिलाते हुए उसकी बातें सुनने लगा। उस वक्त पेड़ के ऊपर चांद का एक छोटा-सा हिस्सा दिखने लगा था, और तालाब का कुछ पानी चमचमाने लगा था।

कॉलेज की पढ़ाई के चार वर्षों में हमने एक-दूसरे को इतनी चिट्ठियां लिखी थीं, जिसका कोई ओर-छोर नहीं—भवनाथ ने कहा—यहां तक कि दिन में दो-दो चिट्ठियां भी लिखी हैं। जब छुट्टियों में वह गांव चली जाती थी और दो-चार दिनों तक कोई चिट्ठी नहीं आती थी, तो ऐसा लगा करता था मानो मेरी सांस रुक जाएगी और मैं मर जाऊंगा। फाइनल परीक्षा देकर उसके गांव चले जाने के बाद कुछ दिनों तक चिट्ठी नहीं आयी। मेरे लिए उसके गांव जाकर उसका हाल-चाल पूछना उचित होगा या नहीं—यह बात सोचा ही करता था कि एक रोज उसकी चिट्ठी आयी, जिसमें लिखा था कि उसकी शादी पक्की हो गयी है। मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी। मैं खाना-पीना छोड़कर बिछौने पर पड़े-पड़े सोचने लगा। कभी-कभी तो मन में यह होता था कि वहां जाकर शादी रुकवा दूं···फिर सोचा—उसने मुझे इस बारे में कुछ न लिखकर सिर्फ शादी की सूचना भर दी है; शायद शादी कर लेना ही उसके लिए अच्छा होगा···मैं खामोश रहा, और उसने शादी कर ली।

छः महीने बाद उसकी चिट्ठी आयी। उसने लिखा था—वह अब जी नहीं सकेगी; भवनाथ आकर उसे कहीं ले जाए! पहले तो उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे। यह जानते हुए भी कि उसकी चिट्ठी किसी दूसरे के हाथ में भी पड़ सकती है, उसने एक

Digitized by srujanika@gmail.com

सतर्कतापूर्ण चिट्ठी लिखी। उसका जवाब भी कुछ ही दिनों में आ गया। उसके बाद वे दोनों पहले की ही तरह पत्रालाप करने लगे। वह पत्र में हमेशा लिखा करती थी—मुझे आकर ले जाओ। पत्र में भवनाथ उसे बहुत समझाया करता था एवं सोच-समझकर सभी काम करने की नसीहत दिया करता था। किंतु वह लड़की सिर्फ एक ही बात दुहराया करती थी।

अंत में भवनाथ ने यह निश्चित किया की कुछ भी हो, वह उस लड़की के पास जाएगा। उसने यह बात लड़की को लिखी भी। किंतु इस बार लड़की का पत्र आया कि वह बहुत परेशान है, क्योंकि उसके पति की तबियत खराब है। भवनाथ ने सोचा—यदि वह व्यक्ति मर जाय तो सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। उसने यह बात लड़की को भी लिख भेजी। उसके कुछ ही दिनों बाद लड़की का पत्र आया कि उसके पति गलत दवा खाकर मर गये। साथ ही उसने यह भी लिखा था कि वह उसे बहुत-सी गुप्त बातें बताना चाहती है; जितनी जल्द हो सके, भवनाथ उससे मिले।

बहुत दिनों तक भवनाथ ने उस पत्र का कोई जवाब नहीं दिया, और न ही उस लड़की से मुलाकात करने की कोई कोशिश की। उसे हर रोज इस बात की उम्मीद रहती कि उस लड़की का एक पत्र और आएगा। मगर काफी इन्तजार करने के बाद भी जब कोई पत्र नहीं आया, तो भवनाथ निकल पड़ा। वह समझ नहीं पा रहा था कि इतने लंबे अंतराल के बाद उस लड़की के साथ उसकी मुलाकात किस तरह की होगी। अपरिचित शहर में अज्ञात घर के सामने पहुंचकर उसने एक बच्चे के हाथों उस लड़की को संदेशा भिजवाया। बच्चे ने वापस आकर कहा कि वह भवनाथ से नहीं मिल सकती। हो सकता है, बच्चे ने गलत सूचना दी हो—इस उम्मीद से वह वहीं खड़ा रहा, और अंत में लड़की का नाम लेकर पुकारने लगा। लड़की आयी। भवनाथ ने सोचा था कि

Digitized by srujanika@gmail.com

वह उसे विधवा रूप में देखेगा; किंतु लड़की ने जब दरवाजा खोला तो वह गहनों से सुसज्जित थी और उसने लाल साड़ी पहन रखी थी। भवनाथ ने घर में घुसने के लिए कदम बढ़ाया, परन्तु उस लड़की ने उसकी ओर सिर्फ एक बार देखकर जोर से—"नहीं"—कहते हुए तुरन्त दरवाजा बंद कर लिया।

इतना कहने के बाद भवनाथ ने चुप्पी साध ली। तब तक चांद ऊपर आ चुका था। वह निर्जन स्थान चांद की चांदनी में चमचम कर रहा था। इस परिवेश के साथ भवनाथ की कहानी ने एक इंद्रजालिक वातावरण बना डाला था। मानो उस कहानी के पात्रों के साथ भवनाथ और मुझे याद आ रही लड़की का कोई संबंध न था। मैं तो अपने मन में एक काल्पनिक कहानी की पुनरावृत्ति ही देख रहा था।

इस इन्द्रजाल को एकाएक भंग करते हुए भवनाथ ने कहा—तुम मुझसे कविता की जटिलता की बात पूछ रहे थे न? मान लो, मैंने तुमसे अभी जो कहानी कही है, उसी कहानी को लें—इसके कथानक के सभी पात्रों को निकाल दिया जाय···

संभवतः और किसी वक्त भवनाथ की यह बात मुझे असंलग्न और अतार्किक लगी होती; किंतु मैंने जान लिया था कि यह बात संभव है; अतएव मैंने भवनाथ, उस लड़की, उसके पति और उसके संसार को उस कहानी से अलगा दिया।

भवनाथ ने कहा—ठीक है; अब उसमें से सारे संलाप, सारी भावुकता को निकाल दिया जाय।

मैं आंखें बंद करके उन सबों को भूल गया। अब क्या बच गया? क्या? केवल थोड़ा दुःख, थोड़ा अंतर्दाह, और कुछ समझा!···

खड़े होते हुए भवनाथ ने कहा—चलो अब चलें! और उस चांदनी बिखरे निर्जन द्वीप से बाहर आते वक्त भवनाथ ने कहा—

Digitized by srujanika@gmail.com

अब समझे, कविता क्या है ? जो कुछ भी शेष बच गया, वही कविता है !

गाड़ी लेकर घर लौटते वक्त मैं यह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि जो कहानी भवनाथ ने कही, वह उसकी आपबीती घटना है, या मुझे कविता की जटिलता समझाने के लिए एक उदाहरण मात्र था ! खैर, उस रात मैंने भवनाथ का कविता-संग्रह खोलकर पढ़ा, एवं यह अनुभव किया कि उसकी प्रत्येक कविता का तात्पर्य था, और मैं उसकी सभी कविताएं समझ रहा था।

इसके बाद मैं जब तक अपने शहर में रहा, बीच-बीच में भवनाथ से मिलता रहा। कोई नयी कविता लिखने पर भवनाथ सबसे पहले मुझे दिखाता, और मैं उसका रसास्वादन करके खुश होता था। मेरा तबादला दूसरे शहर में हो जाने पर भी, बीच-बीच में भवनाथ मुझे डाक से चिट्ठियां और अपनी नयी-नयी कविताएं भेजा करता था।

बीच में एक बार, कई दिनों तक उसकी कोई चिट्ठी न आने पर परेशान होकर मैंने उसे एक पत्र लिखा। पत्र का जवाब बहुत दिनों बाद आया। पत्र के साथ जो कविता आयी थी, उसे मैंने पहले पढ़ा। अजीब किस्म की कविता थी—ऐसे कई अक्षर-समूह के शब्द, जिनका कोई अर्थ नहीं, किसी शब्द का किसी शब्द से कोई संबंध नहीं—सिर्फ सुनने में मधुर कुछ शब्द ! और पत्र में भवनाथ ने लिखा था—सुनकर तुम खुश होगे कि मैं फिर प्यार में पड़ गया हूं। हाल ही में मैंने पढ़ा है कि अमेरिका के वैज्ञानिक, अनुसंधान करने के बाद इस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं कि दो लोगों के बीच भावों का आदान-प्रदान सिर्फ सात प्रतिशत शब्दों के माध्यम से, अड़तीस प्रतिशत स्वर के तथा बाकी पचपन प्रतिशत चेहरे की भाव-भंगिमाओं के माध्यम से होता है···

यह बात पढ़कर मैं एकाएक समझ नहीं पाया कि यह किस तरह

Digitized by srujanika@gmail.com

का प्यार है ? क्या वही पहलेवाली लड़की के साथ ? या पहले की घटना की तरह यह भी एक संदेह की चीज है ? अब भवनाथ की कविताएं मुझे कहीं नहीं दीखती थीं। उसने मुझे पत्र लिखना भी बंद कर दिया था। इसी बीच किसी ने मुझे बतलाया कि भवनाथ पागल हो गया है।...

किंतु मैं जानता था, भवनाथ स्वस्थ मानसिकता के साथ अपने उसी पुराने कमरे में है, और जब मैं उसके पास पहुंचूंगा तो देखूंगा—उसने अपने शब्दकोश एक ओर सरकाकर रख दिये हैं, और एक टेप-रिकार्डर के सामने बैठकर उसके साथ गंभीर बात-चीत में मशगूल है।

Digitized by srujanika@gmail com

मृत्युबोध

मौत दो तरह की हो सकती है—एक तो अनचाही मौत, जो कि अज्ञानियों की मौत है और जो कुछ लोगों के लिए बार-बार होती है। ज्ञानियों की मौत स्वेच्छाकृत मौत है, जो मात्र एक ही बार होती है। जब साधारण जीवन-यापन, वह किसी भी कारण से क्यों न हो, संभव नहीं हो पाता तो ज्ञानी अपनी इच्छा से मौत का सामना करता है। वह अपनी सारी कामनाओं को मन से निकाल फेंकता है, और स्वयं को संपूर्ण सांसारिक बंधनों से मुक्त कर लेता है। उसके बाद वह खाना-पीना छोड़कर अपने शरीर को विलीन होने के लिए छोड़ देता है। उसकी आत्मा शरीर से अलग हो जाती है। विभिन्न कर्म, जो आत्मा से जड़ित होते हैं, आत्मा उन सभी बंधनों से अपने को मुक्त कर लेती है। यह जैन सूत्र में लिखित सल्लेखना का तत्त्व है।

निकट अतीत में, १३ अगस्त १९७३ को इस सल्लेखना की शपथ सुधर्मी सागर मुनि ने ली थी। पहले उन्होंने खाना छोड़ दिया, और ६ सितंबर को अंतिम बार जल-स्पर्श किया। शपथ लेने के ४२ दिन बाद २४ सितम्बर को उनका देहांत हो गया।

सल्लेखना शपथ में तीन तरह की मौत का उल्लेख किया गया है—भक्त प्रत्याख्यात मौत, इंगित मौत एवं पादपयोगमन मौत। शायद तुम बोर होने लगी हो, नर्स ! मेरी ओर देखो, शुरू-

Digitized by srujanika@gmail.com

शुरू में मैं भी जब यह विषय पढ़ रहा था, मुझे भी ऊब लगने लगी थी। किंतु आहिस्ता-आहिस्ता मैं इस विषय में इतना डूब गया कि बार-बार पढ़ने के बावजूद इन बातों से ऊब नहीं हुई। खैर, छोड़ो! अब मैं किसी और के बारे में कहता हूं, या तुम्हीं अपने ब्वाय फ्रेंड के बारे में कहो। देखा, तुम्हारे यार का नाम लेते ही तुम्हारे चेहरे की ऊब अचानक किस तरह उड़ गयी—ठीक मौत से जिंदगी के परिवर्तन की तरह—है न!

आज मैं ठीक-ठाक हूं और मेरी मानसिक स्थिति भी पहले से अच्छी है। शायद तुम्हें विश्वास नहीं होता! आज तक मैंने तुमसे इधर-उधर की कितनी ही अंटशंट बातें कहीं होंगी, और शायद तुम सोचती होगी कि मेरा दिमाग कुछ फिर गया है। किन्तु मेरा मस्तिष्क पूरी तरह स्वस्थ है और मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं अपनी पुरानी अवस्था में लौट आया हूं। आज तुम्हें मेरी बात सुननी ही होगी। मैंने क्या सारी बातें तुम्हें पहले बतायी हैं? नहीं! आज तुमसे सारी बातें अच्छी तरह फिर से कहूंगा। मेरी कमीज की जेब से वह पर्स दोगी? देखो, मेरे कार्ड में क्या लिखा है—

सनातन पंडित

१९३८-१९८०

हां, सन् १९८० भी बीत गया; लेकिन मैं अभी तक जीवित हूं और उस लामा की भविष्यवाणी झूठी निकली। करीब पन्द्रह साल पहले बनारस में उस लामा से मेरी मुलाकात हुई थी। वह तिब्बती लामा, लासा से कोसांबी जाते वक्त रास्ते में बनारस में कुछ दिनों तक ठहरा था। एक दिन बनारस घूमते वक्त मैंने उस लामा को एक पेड़ के नीचे बैठे देखा। गर्मी के दिनों में भी वह लामा ऊनी पोशाक पहने था, और उसके करीब उसका एक भारतीय चेला बैठा था। मैं लामा के पास जा बैठा। लामा कोई

Digitized by srujanika@gmail.com

भी भारतीय भाषा नहीं समझता था; वह सिर्फ मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। मैंने कहा, "मैं अपना भविष्य जानना चाहता हूं।"

लामा के करीब बैठे व्यक्ति ने कहा, "नहीं, वे ज्योतिषी नहीं हैं।"

मुझे इस बात से संतोष नहीं हुआ, क्योंकि लामा अभी भी हंस रहा था। मेरे बार-बार पूछने पर लामा ने अपनी भाषा में, करीब बैठे व्यक्ति से कुछ कहा और उस व्यक्ति ने मुझसे कहा—"१७ दिसम्बर १९८०।"

उसके बाद वह लामा एकाएक गंभीर हो गया, और वह व्यक्ति दूसरी ओर मुंह फेरकर बैठ गया। मैं समझ गया कि उनसे और प्रश्न करना निरर्थक है। भविष्य की इस तारीख को हाथ में लिये मैं होटल लौट आया।

वास्तव में कहा जाय तो ज्योतिषी और सामुद्रिक विद्या में मेरा विश्वास उस समय जमा, जब मैंने अपनी दुकान खोली। उससे पहले मैं खूब साहसी था—भूत-प्रेत, भगवान, भाग्य, पुनर्जन्म इत्यादि किसी से नहीं डरता था—यहां तक कि मौत से भी नहीं। किसी के मरने पर मेरी आंखों से आंसू नहीं बहते थे। मैं सोचता था—मौत कुछ नहीं है और मौत के बाद भी कुछ नहीं है। सभी चीजों को मैं निर्लिप्त रूप से स्वीकार कर लेता था। किंतु जब मुझ पर सारे सांसारिक दायित्व का बोझ आ गिरा, तब मैंने भविष्य जानना चाहा।

और भविष्य जानना ही अपनी मौत की तारीख जानना है। कारण, यह जीवन एक परिसमाप्ति की प्रस्तुति मात्र है। ज्ञात हो, अज्ञात हो, मनुष्य इसी प्रस्तुति में जुटा रहता है। अंतिम कर्ज चुकाना ही मौत है। किन्तु तुम कहोगी मौत कब आएगी और किस जगह आएगी, कौन जानता है? बगदाद के बाजार में

Digitized by srujanika@gmail.com

व्यापारी के शरीर को जिस बुढ़िया ने धक्का दिया, वह खुद मौत थी एवं उसके चेहरे पर विस्मय छाया हुआ था। मौत से बचने के लिए वह व्यापारी घोड़ा दौड़ाता हुआ सामारा चला गया; लेकिन सामारा की सराय में बुढ़िया उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। सामारा में ही उनकी मुलाकात होनी थी।

मेरी इतनी सारी बातें कहने का आशय यह है नर्स, कि मनुष्य सिर्फ यहीं असहाय है। वह अपनी मौत की तारीख खुद तय नहीं कर सकता। किन्तु मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि मैं १७ दिसम्बर १९८० बुधवार को शरीर त्याग दूंगा, एवं इसके लिए मैंने अपने-आपको पूरी तरह से तैयार भी कर लिया था; यद्यपि सन् १९८० अभी कई साल बाद आने वाला था। मैं यह जानता था कि जिस शरीर से इस पृथ्वी पर मेरी सबसे ज्यादा घनिष्ठता है, और जिसके साथ मैं इतने दिन गुजार चुका हूं, उसे एक दिन त्यागना है। लेकिन मुझे यह भी मालूम था कि इस शरीर को त्यागने पर मैं मुक्त हो जाऊंगा—दु:ख, प्रेम, विश्वास-घात से; उम्र, दारिद्र्य और दर्द के उत्पीड़न से।

मेरे दवा खाने का वक्त हो गया ? अच्छी बात है, दो ! इसमें नींद की दवा भी है न ? यदि देखा जाय तो नींद भी एक छोटी-मोटी मौत है। नींद लुभावनी है; लेकिन मौत उससे भी ज्यादा लुभावनी।

मुझे और कितने दिनों तक यहां रहना होगा, नर्स ? मैं सोचता हूं, जल्द ही लौट जाऊं। लेकिन फिर सोचता हूं कि मैं तो सब कुछ बंद कर आया हूं; मुझे फिर से नयी जिन्दगी शुरू करनी होगी। तुम कह सकती हो कि इसमें घबराने की क्या बात है ? अरे, तुम तो जाने लगी। मैंने तो अभी तक तुम्हें सारी बातें बतायी ही नहीं। नहीं, इस बार तुम्हें सारी बातें ठीक-ठीक समझाऊंगा।…

किंतु क्या ये सब बातें अच्छी तरह समझाकर कही जा सकती

Digitized by srujanika@gmail.com

हैं ? क्या मैंने खुद अपने आप को समझा है ? अथवा क्या प्रत्येक चीजों का अपना एक स्वरूप है ? देखो, मेरे नाम को ही ले लो ! पंडित भी मेरा खुद का नाम नहीं है। मेरी किताबों की दुकान होने के कारण तथा लोगों को हमेशा अपने अल्प ज्ञान से कुछ-कुछ समझाते रहने की वजह से मुझे यह नाम दिया गया था, और मैंने भी इस नाम को स्वीकार लिया था। सब मेरा वास्तविक नाम भूल गए। जैसे दीनानाथ के वास्तविक नाम के बदले हम उन्हें सिर्फ दीना मास्टर के नाम से ही जानते थे।

देखो, तुम जाने को उतावली हो, फिर भी मैं अपनी बात तुम्हें ठीक से कह नहीं पा रहा हूं। नहीं, इस बार मैं एकदम शुरू से प्रारंभ करता हूं—अपने जन्म से। लेकिन अपने जन्म की बात क्या कोई जानता है ? हर इन्सान के लिए उसका जन्म उतना ही विस्मयपूर्ण है, जितनी उसकी मौत। बहरहाल, जब से मैंने होश संभाला, अपने आपको चाचा के पास पाया। आगे चलकर मालूम हुआ कि मेरे मां-बाप मर जाने के कारण चाचा मेरा पालन-पोषण कर रहे थे। उनके कई बच्चे थे। चाचा छोटी-सी सरकारी नौकरी करते थे और बहुत ही शांत स्वभाव के थे। किंतु चाची खूब गुस्सैल स्वभाव की थीं और हमेशा सबको डांटती रहती थीं। अब मैं समझ गया हूं कि अपने कमजोर स्वास्थ्य के कारण ही वे चिड़चिड़े स्वभाव की थीं। बात-बात पर चाची मुझे गाली देती थीं, और इसीलिए मैं कहूंगा कि मेरा बचपन अशांति में ही बीता था।

कभी-कभी मैं यह सोचा करता था कि मैं उनका अपना बेटा नहीं हूं, इसलिए वे मुझे इतना डांटती हैं। किंतु यदि उस समय मैंने और थोड़ा-सा सोचा होता, तो जान जाता कि वे अपने बच्चों को भी उतना ही डांटती थीं। घर की अशांति की वजह से स्कूल में भी मेरा मन पढ़ाई में ठीक से नहीं लगता था। एक दिन उसी

Digitized by srujanika@gmail.com

तरह की एक अप्रिय घटना के बाद मैं चाचा का घर छोड़कर चला आया।

दिन भर इधर-उधर भटकने के बाद, शाम को मैं म्युनिसिपैलिटी मार्केट के पास आकर खड़ा था। किसी का सामान भरा ट्रक आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। आस-पास कोई कुली नहीं था। दुकानदार ने आकर इधर-उधर निगाह दौड़ाते हुए कहा, "ऐ लड़के, देख क्या रहा है, ट्रक से सामान उतार!"

बिना कुछ सोचे ही मैं ट्रक से सामान उतारने में जुट गया। सौभाग्य से उस दुकानदार को एक आदमी की जरूरत भी थी। जिस दिन घर से निकला, उसी दिन मुझे नौकरी मिल गयी। मैं उसी दुकान में रहने लगा। कुछ रोज बाद चाचा मुझे ढूंढ़ते हुए वहां आ पहुंचे; किंतु मैंने उन्हें घर चलने से साफ इनकार कर दिया।

नौकरी शुरू करने के कुछ ही वर्षों बाद, म्युनिसिपैलिटी के खुले मैदान में बैठकर मैं अपनी एक निजी बिसातखाने की दुकान लगाने लगा। इस बीच कई बार चाचा आकर घर लौट चलने को कहते रहे, किंतु मैं नहीं गया। आहिस्ता-आहिस्ता मैं अपनी दुकान को बढ़ाने में लग गया। इसी बीच मेरा परिचय दीना मास्टर से हुआ था। इसी खुले मैदान में ही दीना मास्टर की किताबों की दुकान थी। दीना मास्टर खादी पहनते थे, खूब शांत और भद्र प्रकृति के थे, सबसे अच्छा संबंध रखते थे। कभी किसी को कोई दिक्कत होती तो वह दीना मास्टर के पास जाता था। दीना मास्टर उसकी मदद भी करते थे।

जिस दिन म्युनिसिपैलिटी के लोग आकर हम लोगों से पैसा मांगने लगे, हम सब खुले में दुकान लगाने वाले मिलकर दीना मास्टर के पास गए। दीना मास्टर बोले, "नहीं, हम लोग रिश्वत नहीं देंगे।" अंत में म्युनिसिपैलिटी वालों ने हम लोगों पर मुकदमा कर दिया। पुलिस आयी। दीना मास्टर के कहे अनुसार

Digitized by srujanika@gmail.com

हमने पुलिस को रोका। लेकिन पुलिस जबर्दस्ती हम सब की दुकान तोड़ गयी; हम लोगों को जेल भेज दिया गया। जेल में हम पूरे अठाईस दिनों तक रहे। वह समय हम लोगों को अखर जाता, यदि दीना मास्टर हमारे साथ न होते।

दीना मास्टर पहले भी आंदोलन के समय जेल गए थे, एवं जेल के अंदर भी मनुष्य किस तरह इज्जत के साथ रहता है, वे इसका उदाहरण थे। यद्यपि हम लोग थोड़ी-थोड़ी-सी बातों में घबरा जाते थे, मगर दीना मास्टर की शांत प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। यद्यपि उन पर उनके परिवार की ढेर सारी जिम्मेदारियां थीं, मगर वे तिल भर भी विचलित नहीं थे।

'इस दुनिया के बाहर भी ज्ञान की एक संपूर्ण दुनिया है', यह बात मैंने दीना मास्टर की संगति में आकर जानी। जेल जाते वक्त दीना मास्टर अपनी दुकान से कुछ किताबें थैले में भर लाये थे। उनमें से उन्होंने सबसे पहले मुझे संपूर्ण महाभारत पढ़ने को दी थी। यद्यपि महाभारत की थोड़ी-बहुत बातें मैं पहले से ही जानता था, फिर भी जेल के बंद परिवेश में महाभारत की कहानियों ने मुझे एक नया अनुभव दिया। जहां कहीं भी समझने में कोई दिक्कत होती थी, मैं दीना मास्टर के पास जाता था; और वे मुझे खूब अच्छी तरह समझा देते थे। उन्हीं के प्रभाव से मुझमें पढ़ाई के प्रति एक अजीब-सा झुकाव पैदा हुआ। उसके बाद मैं सभी चीजें पढ़ने लगा, जो भी किताब हाथ में पड़ गयी। कहा जाय तो मुझ-जैसे अकेले व्यक्ति के लिए किताबों की दुनिया ही एक पलायनवादी का देश हो गया।

क्या फिर दवा खाने का वक्त हो गया ? समय कितनी जल्द बीत जाता है ! देखते-देखते सुबह दोपहर होकर हठात् संध्या हो आती है। कल सुबह बारिस हो रही थी। आज देखो, सुबह

Digitized by srujanika@gmail.com

किस तरह सुनहरी धूप से चमचमा रही है। संभव है इंद्रधनुष भी निकले! फिर कल की सुबह कैसी होगी, कौन कह सकता है?

मैं तुम्हें वचन देता हूं नर्स, मैं तुम्हारी बात मानकर चलूंगा, सही समय पर दवा खाऊंगा! कल सुबह कुछ और स्वस्थ हो गया होऊंगा, जिससे कल की सुबह और भी सुंदर लगेगी। तुम सिर्फ दो मिनट बैठो नर्स! मैं तुम्हें अपनी दो बात संक्षेप में बताता हूं। कहा जाता है कि डरपोक व्यक्ति बारंबार मौत को गले लगाता है। मैं अपने-आप को साहसी मानता हूं। इसके मायने, क्या मैंने बारंबार जीवन को गले लगाया था? क्या मेरा जीवन कई छोटे-छोटे जीवनों का योग था। मेरी बिसातखाने की दुकान, मेरा जेल जाना, मेरा विवाह—क्या ये सब मेरे लिए एक-एक स्वतंत्र जीवन थे?···

जेल से लौटने के बाद किताबों की दुकान खोलने की बात तो तुम्हें मैंने बतायी थी न? हम सब ने अपनी भूल की माफी मांग-कर; भविष्य में अच्छा व्यवहार करने का बांड लिखकर जेल से छुट्टी पा ली। सिर्फ दीना मास्टर अंदर रह गए, क्योंकि उन्होंने कागज पर दस्तखत नहीं किया था। पुनः म्युनिसिपैलिटी के मैदान में दुकानें लगीं। इस बार म्युनिसिपैलिटी ने इन दुकानों को स्वीकृति दे दी। दीना मास्टर के बदले इस बार किताबों की दुकान मेरी थी। व्यापार अच्छा चला। कुछ दिनों तक जेल जाकर हम दीना मास्टर से मुलाकात करते रहे और उनके परिवार के बारे में पूछते रहे। उनकी पत्नी किसी के घर नौकरानी का काम करती थीं, और उनके बच्चों का नाम स्कूल से कट गया था। लेकिन दीना मास्टर पहले की तरह ही थे, और मुकदमे की विभिन्न तारीखों के इंतजार में जेल में ही रहते थे। उन पर पुलिस का रास्ता रोकने आदि विभिन्न दफाओं में मुकदमा किया गया था। किंतु वे अटल थे।

Digitized by srujanika@gmail.com

धीरे-धीरे दीना मास्टर और उनके परिवार से हम लोगों का संपर्क कम होने लगा।

एक दिन सूचना मिली कि दीना मास्टर की पत्नी शहर छोड़कर अपने गांव चली गयी। बहुत दिनों के बाद वह मुकदमा भी वापस ले लिया गया, और दीना मास्टर भी जेल से छूटकर गांव चले गए। उनसे मेरी मुलाकात नहीं हो सकी। एक बार सोचा था कि उनके गांव का पता लगाकर उनसे मिल आऊं; किंतु वह भी नहीं हो पाया। दुकान की व्यस्तता से फिर समय ही नहीं निकाल पाया। बहुत दिनों के बाद किसी ने आकर बताया कि दीना मास्टर की मृत्यु हो गयी।

कई बार मुझे दीना मास्टर का ख्याल आता रहा। मैंने जीवन में जो कुछ भी पाया है, सब उन्हीं के आशीर्वाद से। वे मुझे एक संकीर्ण जगह से उठाकर एक व्यापक दुनिया में पहुंचा गए थे। सच कहा जाय तो मेरे जीवन पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके मरने की खबर पाकर मुझे कई दिनों तक अजीब-सा लगता रहा, साथ ही इस बात का पश्चात्ताप भी होता रहा कि मैं उनके लिए कुछ न कर सका।

दीना मास्टर का मर जाना, मेरे लिए मौत का पहला निकट अनुभव था। मैं उनकी मौत होने को सहज ही स्वीकार नहीं कर पाया था। कई बार मुझे ऐसा लगता था कि एक दिन सुबह अचानक दीना मास्टर मेरी दुकान पर आ पहुंचेंगे, और अपने थैले से कुछ और किताबें निकालकर मुझे देंगे। किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया, दीना मास्टर की याद धुंधली होती गयी।

इसी बीच मुझे अपनी चाची की मृत्यु की सूचना मिली, और मैं कई वर्षों बाद चाचा के घर गया। चाचा के जिस घर में मैंने अपना बचपन बिताया था, आज वह मेरे लिए संपूर्णतया नया था। आज सारे संपर्क औपचारिक बन गए थे। उनके घर से लौटते

Digitized by srujanika@gmail.com

वक्त, बीती बातें याद करने पर मुझे लगा कि चाची वाकई मुझे चाहती थीं; उन्हें अपने बच्चों से जितना प्यार था, मुझसे भी उतना ही प्यार था। इस उपलब्धि के बाद मुझे दिली तसल्ली मिली, और मेरे दिल में अपनी किशोरावस्था के प्रति जो आक्रोश था, वह दूर हो गया।

मेरी किताबों की दुकान अच्छी तरह चलने लगी। मैं विभिन्न प्रकार की किताबें लाकर दुकान में रखने लगा। अक्सर स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी दुकान पर आकर नयी-नयी किताबों को उलट-पलटकर देखने लगे। उनकी परिस्थिति समझकर मैंने किताबें उधार देने की व्यवस्था भी कर दी। इस तरह की व्यवस्था हमारे शहर में एकदम नयी थी। किताबें उधार देने की वजह से धीरे-धीरे मेरी दुकान खूब प्रसिद्ध हो गयी, साथ ही छात्र-छात्राओं का एक अड्डा भी बन गयी। मैं स्वयं भी बहुत किताबें पढ़ने लगा, और किताब खरीदनेवाले लड़के मुझसे किताबों पर चर्चा भी करने लगे। हालांकि मैंने कॉलेज में पढ़ाई नहीं की थी, फिर भी अपनी कोशिश से विभिन्न विषयों को पढ़ चुका था। इसी बीच सभी लोग मुझे पंडित कहकर बुलाने लगे, और मैंने भी इस नाम को स्वीकार कर लिया।

आज तो तुम्हें हंसना ही होगा नर्स ! मुझे देखो, मौत के मुंह से लौटकर भी मैं कितना खुश हूं। जिस दिन मैंने तुम्हें पहली बार देखा था, मैं जानता था कि तुम्हारा नाम मरियम होगा। और तुम्हारे बिना बताए ही मैं जानता हूं कि तुम्हारे ब्वॉय-फ्रेंड का नाम जोसेफ है। जोसेफ का खत नहीं आया है, इसीलिए तुम उदास हो। किंतु देखो, आज का दिन कितना सुहावना है ! तुम्हारी चिट्ठी जरूर आएगी। इस तरह का सुहावना दिन व्यर्थ नहीं जा सकता···

आज मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं न ? और कितने दिन लगेंगे मुझे

Digitized by srujanika@gmail.com

लौटने में ? तुम मेरी इतनी सेवा कर चुकी हो, मैं तुम्हारा ऋणी हो चुका हूं; किंतु जाने से पहले मैं अपनी सारी बातें तुम्हें बताऊंगा। तुम मुझे अपनी शादी का कार्ड भेजोगी ना ? देखना, मैं जहां कहीं भी होऊंगा, तुम्हारी शादी में जरूर पहुंचूंगा ! मैं जानता हूं, तुम्हें गुलाब बहुत अच्छा लगता है। मैं तुम्हारे लिए सबसे सुंदर गुलाब लाऊंगा···

मैंने तुम्हें अपनी शादी की बात बतलायी थी न ? साल-भर के संक्षिप्त जीवन के बारे में भला क्या कहा जा सकता है ! एक दिन सुबह दुकान पर बैठा था, चाचा आ पहुंचे। इन कुछ वर्षों में वे और बुढ़ा गये थे। वे मेरे विवाह का रिश्ता लेकर आए थे। मेरी उम्र काफी हो जाने पर भी, मैंने शादी की बात अब तक नहीं सोची थी।

चाचा की बात मानकर मैंने शादी कर ली। मैं नहीं जानता था कि जिससे मेरी शादी हो रही है, उसकी उम्र मुझसे बहुत कम है और यह वही लड़की है, जो चुपचाप मेरी दुकान से कविता की किताबें उधार ले जाया करती थी।

मैं नहीं जानता था कि वैवाहिक जीवन आदमी को इतनी पूर्णता दे सकता है। मुझे लगा कि मेरा जीवन संपूर्ण हो गया है। मेरा कारोबार तेजी से चलने लगा। मैंने दुकान में नौकर रखा। बड़ा-सा घर किराये पर लेकर रहने लगा। मेरा जीवन सुचरिता के चारों ओर केन्द्रित हो गया। अब मुझे जिन्दगी से कुछ नहीं चाहिए था। कारण, मुझे सब कुछ मिल गया था।

मगर साल-भर में ही मेरे जीवन के सुख का यह अध्याय हठात् समाप्त हो गया। मौत से मेरा पहले से कोई घनिष्ठ परिचय नहीं था। चाची मरी थी, तब मुझे कुछ भी नहीं लगा था। किंतु सुचरिता मेरे सामने से धीरे-धीरे चली गयी, मेरी ही गोद में सिर रखकर। प्रसव के बाद ही सारी जटिलताएं शुरू हुईं।

Digitized by srujanika@gmail.com

नवजात शिशु ही सुचरिता की मौत का कारण हुआ। सुचरिता के बिछौने के पास बैठकर, उसे धीरे-धीरे मुझे छोड़कर दूर जाते हुए देखते वक्त, मैं सिर्फ एक ही बात सोच रहा था—यह बच्चा भी मर जाए! आखिर वही हुआ। श्मशान में सुचरिता का अठारह साल का शरीर, मेरी सुख-शांति, भविष्य, दुनिया की सभी सुंदर सुबहों और शामों को चिता पर रखकर लौटने के कुछ दिनों बाद ही वह बच्चा भी मर गया। सुचरिता से जुड़े मेरे सारे बंधन कट गए।

किंतु बंधन क्या इतनी आसानी से कटते हैं! मेरे जीवन का सब कुछ बदल गया। मैंने स्वयं सुचरिता के पास जाना चाहा। अब मैं मरने के अधिकार के बारे में पढ़ने लगा। केलिफोर्निया के 'हेम्लक्' और लंदन के, 'एकजिट' संस्थाओं से पत्राचार किया। मैं अंत में इस निर्णय पर पहुंचा कि अपनी जान लेने का अधिकार मुझे है, और मैं स्वेच्छा से अपनी मौत अपनाऊंगा।

इसी वक्त मुझे उस तिब्बती लामा की भी बात याद आयी—१७ दिसंबर। अब मैंने अपना जन्मदिन मनाने के बजाय मृत्यु-दिन मनाना शुरू कर दिया। मेरी उम्र मेरे जन्मदिन की तारीख से कितनी हो गयी है, मैं यह नहीं सोचा करता था; मैं सोचा करता था कि मृत्यु की तारीख से मेरी उम्र और कितनी बची है। इसके लिए कोई-कोई तो मेरा उपहास भी करते थे। किंतु अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद से मैंने सारे सामाजिक बंधनों को काट डाला था, तथा किसी की किसी भी बात पर ध्यान नहीं देता था।

यद्यपि मेरी मृत्यु के कुछ दिन बाकी थे, फिर भी मैं अपने सारे संपर्क काटने लगा। हालांकि यह केवल एक मानसिक स्थिति मात्र थी। कारण, कुछ भी क्यों न हो, मनुष्य को जीना पड़ता है एवं जीने की जिम्मेदारी से उसकी मुक्ति नहीं है। मुझे

Digitized by srujanika@gmail.com

अपनी दुकान चलानी पड़ी, और आखिर में कुछ लोगों से संपर्क भी रखना पड़ा। आजकल मैं कुछ गंभीर हो गया था, एवं लोगों के साथ कम बातचीत करने लगा था। नतीजा यह हुआ कि मेरे दोस्त कम हो गए।

अब मैं अपना समय मौत के बारे में जानने के लिए लगाने लगा। इसी वक्त मैंने सल्लेखना के बारे में पढ़ा था एवं एकजिट संस्था से प्राप्त लेखों से मौत के बारे में जाना था। मैं अपनी मौत किस तरह अपनाऊंगा, इस बारे में मेरी एक निर्दिष्ट धारणा बन चुकी थी। मैं कई बार अपनी वसीयत लिखने की सोचकर भी अंत में लिख नहीं पाया था। मेरे पास जो कुछ भी था, सब दीना मास्टर के परिवार के नाम लिखने की मेरी इच्छा थी; लेकिन काफी कोशिश करने के बावजूद मैं उनका पता-ठिकाना नहीं पा सका। उसके बाद मैंने अपनी संपत्ति के भविष्य के बारे में कभी कुछ नहीं सोचा।

अरे तुम रो रही हो क्या नर्स, ? पास की कोठरी में वह औरत मर गयी, इसलिए ? किंतु इंसान असीम शक्ति और सहन-शीलता का केन्द्र है। उस औरत का पति और उसके बच्चे सभी स्वीकार कर लेंगे, उसकी मौत। दुनिया अंतहीन संभावनाओं से पूर्ण है। जिन्दगी फिर सब को घेर लेगी। तुम्हें विश्वास नहीं होता न ? देखो, मैं मौत को छूकर लौट आया हूं। जब मैंने मरना निश्चित किया—पहले मेरी इच्छा की मौत हो गयी, उसके बाद सुख की मौत, उसके बाद भय की मौत, दुःख की मौत। लेकिन मौत को छूकर लौट आने के बाद क्या हुआ, जानती हो ? अब मुझमें भय नहीं है, इच्छा नहीं है, दुःख नहीं है। सिर्फ एक अपरिहार्य जीवन-शक्ति है। घटनाओं के प्रवाह में जिंदगी पुनः मग्न हो जाएगी···

मेरी ही बात ले लो ! यदि मैं आत्महत्या की कोशिश न

Digitized by srujanika@gmail.com

करता, तो क्या तुमसे मुलाकात हो पाती? कल मेरे लिए क्या लाओगी? कैसा दिन? यह बात सोचने पर फिलहाल मुझे बहुत कुछ दिखलाई देता है—कई नये चेहरे, कई नयी जगहें, कई नयी अनुभूतियां—जिनका कोई अंत नहीं, विकल्प नहीं। मैं जानता हूं कि मेरा मरने का जितना अधिकार है; जीने का भी उतना ही अधिकार है। जिंदगी की कोई भी सामयिक अनुभूति मुझसे मेरा यह अधिकार छीन नहीं सकती।

इसीलिए मैंने मौत को अस्वीकार कर दिया। नींद की दवा भरी गहरी निद्रा को महानिद्रा में बदले, इससे पहले ही मैंने अपना सिद्धांत त्याग दिया। मेरे बेबस हाथ ने मेरे इस निर्णय को मान-कर टेलिफोन का रिसीवर उठा लिया। मैं अपने होटल के कमरे से निकलकर अस्पताल की खाट पर सो गया।

अब मेरे हाथ नहीं थे; दोनों हाथ डैनों में बदल गए थे। मैं कमरे की छत के पास मंडरा रहा था। अंधेरा क्रमशः छंट गया और मुझे सब साफ-साफ दीखने लगा—नीचे सोया हुआ व्यक्ति स्वयं मैं था। इसके बाद मैंने सुचरिता को पुनः देखा—वह मेरे इर्द-गिर्द मंडरा रही थी। मैं ऐसे रास्तों से होकर गुजर रहा था, जहां और कोई नहीं था। और मैं एकाएक जेलखाने में घुस गया। वहां चिता जल रही थी, और चिता में से चाची मेरी ओर देखकर हंस रही थी। अब लोगों की भीड़ में दीना मास्टर नहीं थे; किंतु वह व्यक्ति था, जिसे दीना मास्टर मृत्युदंड से बचाने की कोशिश कर रहे थे। नवजात शिशु मेरी ओर हाथ बढ़ा रहा था। म्युनिसिपैलिटी की सभी दुकानें तोड़-ताड़कर पुलिस खड़ी थी। किंतु उनके पीछे नयी दुकानें अक्षुण्ण खड़ी थीं। लड़के उड़ते हुए आकर मेरी दुकान से किताबें उठाकर देखते थे और मैं सुचरिता के हाथ में कविता की नयी किताब दे रहा था…

सुचरिता फ्रॉक पहने खड़ी थी। सुचरिता मुसकरा रही थी।

Digitized by srujanika@gmail.com

सुचरिता की मांग में सिंदूर था। सुचरिता सिनेमा हॉल में मेरे हाथ पर अपना हाथ रख रही थी। सुचरिता गर्भवती थी। सुचरिता सुनहरी धूप में चमकते इन्द्रधनुष पर लेटी थी। सुचरिता अस्पताल के फाटक के पास नर्स की पोशाक पहने खड़ी थी···

जिंदगी भी दो तरह की हो सकती है—एक अनचाही जिंदगी, जो अज्ञानियों की जिंदगी है; ज्ञानियों की जिंदगी स्वेच्छाकृत जिंदगी है। तुम शायद बोर हो रही हो, नर्स ! मेरी ओर देखो। अरे, तुम तो मरियम नहीं हो, नयी नर्स हो···किंतु मैं तुम्हारा नाम भी जानता हूं···

Digitized by srujanika@gmail com

संन्यास का रास्ता

ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर हमारी गाड़ी एक बार फिर गड्ढे में जा घुसी। डेरेक मेरे शरीर से टकराया, उसकी नींद खुल गयी और वह अन्यमनस्क-सा बोल उठा—"ओ, हेल् !" हालांकि हम खूब सवेरे निकले थे, इस वक्त धूप बहुत तेज थी। रास्ता खराब होने की वज़ह से हमारी गाड़ी धीरे-धीरे चल रही थी, एवं ऐसा लग रहा था, कि अपनी मंजिल तक पहुंचने में हमें अभी काफी समय लगेगा।

उन दिनों मैं सचित्र भागवत पुराण पर शोध कर रहा था। डेरेक अमेरिका के एक म्यूजियम में भारतीय पांडुलिपि विभाग का संरक्षक था, और इसी कारण पत्रों के ज़रिये डेरेक से मेरा परिचय हुआ था। इस वक्त हम दोनों एक सबसे सुंदर पांडुलिपि की तलाश में निकले थे। इस पांडुलिपि के कई पृष्ठ अमेरिका और यूरोप के विभिन्न संग्रहालयों में संरक्षित थे, एवं बाकी के लगभग डेढ़ सौ पृष्ठ स्वामी धर्मानंद के संग्रहालय में थे। यह एक बहुमूल्य पांडुलिपि थी, सिर्फ शोध के लिए ही नहीं, बल्कि मूल्य की दृष्टि से भी। यूरोप की एंटिक की दुकानों में इस भागवत पुराण के प्रत्येक पृष्ठ का मूल्य नौ सौ अमेरिकन डॉलर था।

इस पांडुलिपि के बारे में मुझे डेरेक के पत्र से मालूम हुआ था। अपने शोध-कार्य के लिए मैं विभिन्न संग्रहालयों से पत्र-

Digitized by srujanika@gmail.com

व्यवहार करता था, एवं अमेरिका के इस संग्रहालय से मेरे पत्र का जवाब डेरेक के दस्तखत से मिला था। डेरेक ने लिखा था कि जिस पांडुलिपि के तीन पृष्ठ उनके संग्रहालय में हैं, उसका अधिकतर भाग भारत वर्ष में ही है। इसी माध्यम से मेरा डेरेक से पत्र-व्यवहार प्रारंभ हुआ। बीच-बीच में डेरेक विभिन्न शोध-पत्रिकाओं में भारतीय चित्रकला पर लेख लिखा करता था, एवं कई भारतीय भाषाएं जानने की वजह से शोधकर्ताओं में उसका नाम भी मशहूर था। उन पत्रों और शोध-प्रबंधों से मैं सोचता था कि डेरेक कोई ज्यादा उम्र और प्रोफेसर किस्म का व्यक्ति होगा किंतु जब उससे मुलाकात हुई तो देखा कि वह बहुत ही कम उम्र का, एवं कपड़ों और रहन-सहन से हिप्पी-सा था। वह संग्रहालय में स्थायी नौकरी नहीं करता था। साल में कुछ महीने वह भारतीय पांडुलिपि विभाग में काम करता एवं जो कुछ कमाता, उससे भारत आकर कुछ दिनों तक रहता। भारत में रहते वक्त वह भारतीय भाषाएं सीखने और चित्रकला का अध्ययन करने में अपना समय बिताता था।

भागवत पुराण का इतना अमूल्य संग्रह मेरे इतने करीब है, डेरेक ने पत्र न लिखा होता तो मैं जान भी नहीं पाता। मैं यह भी नहीं जानता था कि हमारे विश्वविद्यालय से सिर्फ सौ मील की दूरी पर एक आश्रम का संग्रहालय है, जिसकी जानकारी अमेरिका के शोधकर्ताओं को है। डेरेक द्वारा भेजे गए स्वामीजी के पते पर कई चिट्ठियां लिखने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। किसी दुर्गम स्थान पर होने के कारण, एवं बस इत्यादि की सुविधा न होने की वजह से, चाहकर भी मैं वहां नहीं जा सका। इसी बीच मुझे डेरेक का पत्र मिला कि वह भारत आ रहा है; एवं उसके कार्यक्रम में, आश्रम के संग्रहालय में जाना भी शामिल है। उसे पत्र लिखने के बाद वहां जाने की व्यवस्था मैंने ठीक-ठाक कर ली।

Digitized by srujanika@gmail.com

डेरेक से मेरी पहली मुलाकात अजीब तरह की थी। मेरे एयरपोर्ट पहुंचने से पहले ही प्लेन आ चुका था एवं सभी यात्री लांज में आ चुके थे। एक अति संभ्रांत और गंभीर दिख रहे, सोने के फ्रेम का चश्मा पहने किसी सज्जन से पूछने पर पता चला कि वे डेरेक नहीं हैं। मैं एक कोने में खड़ा था, स्वयं डेरेक मेरे पास आया। इस भीड़ में अजीब-सी पोशाक पहने, दाढ़ीवाला जो व्यक्ति अपने कैमरे से गिर पड़े खोल को झुककर ढूंढ़ रहा था, वही डेरेक था। उसके एक कंधे पर कैमरा झूल रहा था और दूसरे कंधे पर बैग। मैंने सोचा कि उसके पास और भी सामान होगा, किंतु डेरेक ने बताया कि उसके पास उतना ही सामान है। एयर-लाइंस के दफ्तर में उसके वापसी टिकट का पता लगाकर हम विश्वविद्यालय चले आए। मैंने अपने विश्वविद्यालय के गेस्ट-हाउस में उसके ठहरने की व्यवस्था की थी।

अपने लेखों में डेरेक जितना संपन्न और स्पष्ट था, व्यक्तिगत जीवन में उतना ही बेपरवाह और अस्तव्यस्त था। एक बैग में भरी चीजों से किस तरह एक कमरा पूरी तरह भरा जा सकता है, डेरक का कमरा इसका उदाहरण था। फर्श पर उसके कैमरे के विभिन्न हिस्से खुले पड़े थे। कागजों के कई बंडल इधर-उधर रखे हुए थे। टेबुल पर उसके टूथ-ब्रश और साबुन आदि के बीच जो एक छोटा-सा चित्र रखा हुआ था, वह काफी कीमती था। टेप के जरिए दीवार पर किसी महात्मा की तस्वीर चिपकायी गई थी, जिसके नीचे अगरबत्ती जल रही थी। वह सिर्फ तीन दिनों के लिए यहां आया था। आने से पहले ही--पूरे एक साल पहले से—उसने ये सब तारीखें निश्चित कर रखी थीं। उसने निश्चित किया था कि एक दिन वह हमारे विश्वविद्यालय के संग्रहालय में काम करेगा, एक दिन भाषा लेबोरेटरी में, और तीसरे दिन वह आश्रम जाएगा। उसे गेस्ट-हाउस में आए अभी एक ही दिन हुआ था,

Digitized by srujanika@gmail.com

किंतु अपने अद्भुत पहनावे की वजह से वह काफी मशहूर हो चुका था; और सुबह हाफ पेंट पहनकर सामने के लॉन पर योगाभ्यास करते वक्त वह एक विशेष आकर्षण का विषय बन गया था।

डेरेक से सीखने को बहुत-सी बातें थीं। कुछ साधारण विषयों में उसका ज्ञान बहुत कम था। कुछ विषयों में उसकी कोई रूचि ही नहीं थी—जैसे राजनीति। वह अखबार नहीं पढ़ता था, एवं अमेरिका की किसी चीज के बारे में उससे कोई कुछ पूछता, तो वह बहुत कम जानकारी दे पाता। किंतु भारतीय चित्रकला अथवा भाषा संबंधी बातचीत के दौरान उसकी आंखें एकाएक उज्ज्वल हो उठती थीं, और वह अचानक एक अलग व्यक्ति बन जाता था। वह हरेक बात ध्यान से सुना करता था, एवं उस बारे में जो उत्तर देता था, उसका प्रत्येक शब्द नपा-तुला और अकाट्य होता था। उसके पहनावे, चेहरे और कम उम्र के बावजूद ऐसे समयों में वह एक प्रवीण प्राध्यापक-सा दीखता था। सिर्फ मैंने ही नहीं, मेरे अन्य कई मित्रों ने भी डेरेक से, अपने संक्षिप्त परिचय के दौरान ही, शोध करने की निष्ठा के बारे में बहुत कुछ सीखा था।

डेरेक में और भी कई अच्छाइयां थीं। उसके खाने-पीने की कोई समस्या नहीं थी। वह शाकाहारी था एवं खाने के मामले में काफी संयमी भी। वह फर्श पर सो जाता। कमरे में गर्मी लगने के कारण एक रात उसने लॉन में ही सोकर बिता दी। विजिटिंग-प्रोफेसर होकर हाल ही में अमेरिका से लौटे हमारे एक प्राध्यापक के घर डिनर-पार्टी में भी डेरेक ने कुछ नहीं पीया। उसके लिए शाकाहारी खाने का इंतजाम करने में गृहस्वामिनी को काफी परेशानी हुई थी। इन प्राध्यापकों में डेरेक सही तरह खप नहीं पा रहा था। मैंने डेरेक को सबसे परिचित करवाकर, अपनी बात-

Digitized by srujanika@gmail.com

चीत में उसे सम्मिलित कर पाने में असमर्थ होने पर, अंत में भारतीय चित्रकला की बात छेड़ी। जब तक बातचीत इस विषय तक सीमित रही, डेरेक काफी उत्तेजित रहा। किंतु यह विषय खत्म होते ही वह निर्जीव-सा एक कोने में जा बैठा।

पार्टी से लौटते वक्त मैं डेरेक को छोड़ने हॉस्टल गया था। कमरे में पहुंचकर डेरेक ने अगरबत्ती जलायी और अति अप्रत्याशित रूप से बोला—मैंने संन्यास लेने की सोची है!

इस वक्त मैं उसकी टेबुल के पास बैठकर उसके कागजों को इधर-उधर पलट रहा था। मेरे हाथ में उसका पासपोर्ट था, एवं पासपोर्ट में जो फोटो चिपका हुआ था, उसे मैं आश्चर्य से देख रहा था। उसमें डेरेक के चेहरे पर दाढ़ी नहीं थी एवं उसने कोट और टाई पहन रखी थी। ऐसा लगता था, मानो अब के डेरेक से उसका कोई संबंध ही न हो। उस फोटो के व्यक्ति को देखने के साथ ही मैंने डेरक के संन्यास ग्रहण करने की घोषणा सुनी तथा स्वामाजी की तसवीर के नीचे बैठे डेरेक को देखकर सोचा, शायद वह संन्यास में पहुंच चुका है। मैं उससे यह बात कहने ही वाला था कि उसने हठात् पद्मासन में बैठकर आंखें बंद कर लीं। मैंने कुछ देर तक प्रतीक्षा की, किंतु डेरेक के आंख न खोलने पर गेस्ट-हाउस से लौट आया।

उन दिनों कभी-कभी मैं भी संन्यास लेने की सोचा करता था। जिस वक्त सिर पर कोई जिम्मेदारी नहीं होती और काम के लिए कोई डेड लाइन नहीं होती, समय काटे नहीं कटता। मन में नाना तरह की विचित्र चिंताएं घुस आती हैं। उस वक्त फिर दिन-वार तारीख कुछ भी याद नहीं आते। सुबह से शाम और शाम से सुबह एक शृंखला में गुंथ जाते हैं। बहुत-से दार्शनिक प्रश्न आकर बेचैन कर जाते हैं, एवं जीवन की सार्थकता के प्रति संदेह होने लगता है भागवत पुराण पढ़ना छोड़कर, ऐसे अवसरों पर मैं सोचा करता

Digitized by srujanika@gmail.com

था कि अब मैं संसार छोड़ दूंगा। किंतु इस तरह की भावनाएं मेरे मन में कभी साकार नहीं हुई थीं। डेरेक से उसकी घोषणा सुनने के बाद मैं भी संन्यास की बात सोचने लगा—मनुष्य की एक ऐसी स्थिति, जहां आसक्ति नहीं है, निराशा नहीं है, इच्छा नहीं है, विकार नहीं है, दुःख नहीं है, उत्तेजना नहीं है, अनुताप नहीं है, यादें नहीं हैं···

दूसरे दिन सुबह-सुबह हम भाड़े की गाड़ी लेकर आश्रम की ओर चल पड़े, रास्ता बहुत खराब था। बीच में सिर्फ एक ही कस्बा पड़ता था, उसके बाद वीरान रास्ते। आगे और कोई बड़ी बस्ती नहीं है। रास्ते में डेरेक ने मुझे स्वामीजी के बारे में बतलाया, एवं स्वामीजी को एक वास्तविक महात्मा तथा बहुगुण संपन्न व्यक्ति के रूप में चित्रित किया। उन्हीं से संन्यास की दीक्षा लेना डेरेक का उद्देश्य था। बहुत दिनों पहले कभी डेरेक ने किसी स्वामीजी से—शायद जिनकी फोटो दीवार पर लगी थी—ध्यान का मत्र लिया था। यद्यपि वह नियमित रूप से उसी ध्यान को अब तक करता आ रहा था, लेकिन उसकी उपयोगिता को लेकर शायद उसे कुछ संदेह होने लगा था। किंतु गाड़ी में बैठे-बैठे वह बीच-बीच में आंख मूंदकर मंत्र-जाप करता, और कुछ समय के लिए सो भी जाता था।

इस बार गाड़ी के झटके से डेरेक की नींद पूरी तरह खुल गयी और वह आंखें मलते हुए सीधी तरह बैठ गया। सुबह नौ बजे से ही जून की धूप खूब तीखी हो चुकी थी, एवं उस रास्ते पर गाड़ियों की आवाज भी बहुत कम थी। डेरेक ने हमारे आगे-आगे जा रहे एक ट्रक की ओर संकेत किया। ट्रक में बर्फ भरा था और ट्रक के डाले पर एक लड़का बैठा था। वह लड़का बर्फ की बड़ी सीली से छोटे-छोटे टुकड़े तोड़कर खेल रहा था, और छोटा टुकड़ा पिघल जाने पर फिर एक टुकड़ा तोड़कर उससे खेलने लग जाता

Digitized by srujanika@gmail.com

था। वह अपने खेल में पूरी तरह मशगूल था। उसका ध्यान और कहीं नहीं था। मानो उस लड़के के लिए बर्फ के टुकड़ों से खेलने के अलावा और सब कुछ अनावश्यक एवं अतार्किक था। डेरेक ने कहा, "मेरी भी इच्छा इस लड़के की तरह बर्फ के टुकड़ों से खेलने और संपूर्ण संसार को पूरी तरह भूल जाने की हो रही है।"

अब रास्ता और भी खराब एवं धूल भरा था। बारंबार हॉर्न देने के बाद बहुत मुश्किल से हमारी गाड़ी उस ट्रक, बर्फ और एकाग्र लड़के को पीछे छोड़ती हुई आगे निकली। चार घंटे, अंधा-धुंध धूल, एकांत रास्ते और गाली देते हुए डेरेक की अनेक शब्दों की स्वगतोक्ति के बाद हमारी गाड़ी बायीं ओर मुड़ गयी, जहां रास्ते के किनारे एक साइनबोर्ड लगा था और तीन चिह्न के नीचे लिखा था—

॥ स्वामी धर्मानन्द महाराज ॥

गुरुकुल आश्रम···कन्याश्रम

कुछ ही दूर आगे जाने के बाद पेड़ों की ओट में वह आश्रम दिखाई दिया। एक खुले स्थान में पर्याप्त जगह घेरे उस आश्रम की दीवारें खड़ी थीं। आश्रम के फाटक पर हमारी प्रतीक्षा में खड़ा व्यक्ति हमें अंदर ले गया। स्वामीजी हमारी प्रतीक्षा करते हुए अपनी कोठरी में विराजमान थे। विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में जिन साधुओं से मैं मिला था, स्वामीजी उनसे कुछ अलग नहीं थे। डेरेक ने स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम किया। स्वामीजी ने हमें बैठने को कहा। पानी पिलाने और कुशलक्षेम पूछने के बाद स्वामीजी ने हमें अपनी पुस्तक—'भारतीय चित्र-कला में शुभ चिह्न' दिखलायी। किंतु मेरा ध्यान स्वामीजी के पास ही रखे भागवत पुराण पर था, जोकि मेरे यहां तक आने का एकमात्र ध्येय था। स्वामीजी मेरी निगाह ताड़ गए थे। उन्होंने पांडुलिपि मेरी ओर बढ़ा दी।

Digitized by srujanika@gmail.com

मरे शोध के लिए यह पांडुलिपि एक अनिवार्य वस्तु थी। कुछ पृष्ठ उलटने के बाद मुझे लगा कि ये पृष्ठ मेरे शोध की दिशा पूरी तरह बदल देंगे। स्वामीजी ने हमारे करीब बैठे व्यक्ति से, मुझे ले जाकर पास की कोठरी की किताबें अच्छी तरह दिखलाने को कहा। इस बार मैंने करीब बैठे उस व्यक्ति को पहली बार अच्छी तरह से देखा। खूब स्वस्थ, ताकतवर, घुटा हुआ सिर और प्रसन्न चेहरे को देखकर मेरी पहली प्रतिक्रिया हुई कि इस व्यक्ति को तो हनुमान कहना चाहिए, और मैंने मन-ही-मन उसका नाम हनुमान रख दिया। हनुमान ने मुझे ले जाकर पास की कोठरी में बैठाया और भागवत पुराण के पृष्ठों को समझाने लगा।

पांडुलिपि देखकर मुझे इतनी हैरत नहीं हुई थी, जितनी हनुमान का ज्ञान देखकर हुई। अपनी नोट-बुक खुली छोड़कर मैं हनुमान की बात सुनने लगा, भागवत पुराण की चित्रकला में निहित ऐसे अनेक तथ्य जोकि मुझे मालूम नहीं थे, उसने उनके बारे में मुझे अवगत कराया। पांडुलिपि देखने की बनिस्बत हनुमान के साथ बातचीत मेरे लिए ज्यादा मूल्यवान थी। मैं हनुमान से उसके बारे में पूछने ही वाला था, कि स्वामीजी ने उसे बुलवा भेजा—और वह मुझे वहां अकेला छोड़कर चला गया। मैं पांडुलिपि से नोट लेने लगा और कई पृष्ठों का फोटो खींच लिया। अपना काम खत्म करने के बाद मैंने बाहर आकर देखा, डेरेक और स्वामीजी मेरा इंतजार कर रहे थे।

मैंने पहली बार आश्रम को ठीक से देखा। हम लोग आश्रम के जिस हिस्से में थे, वह कन्याओं का आश्रम था। बीच में एक खूब ऊंची दीवार थी, जिसके दूसरी ओर छात्रों का गुरुकुल था। कन्याश्रम की सभी छोटी-छोटी लड़कियां और शिक्षिकाएं सफेद साड़ी और नीला ब्लाउज पहने थीं। इतनी बड़ी जगह में स्वामीजी, हनुमान और कुछ शिष्यों के अलावा अन्य सभी औरतें थीं।

Digitized by srujanika@gmail.com

स्वामीजी के बदन पर सिर्फ एक गेरुआ कपड़ा था। हनुमान और अन्य सभी शिष्य सफेद कपड़े पहने थे। आश्रम में सुंदर बगीचा और बहुत-से फलों के पेड़ थे, एवं कुछ हिरन और मोर आ-जा रहे थे।

स्वामीजी ने हमें ले जाकर अपना संग्रहालय दिखाया। मैंने सोचा भी नहीं था कि जनबस्ती के अंतराल में और शहर से इतनी दूर एक संपूर्ण म्यूजियम भी होगा। म्यूजियम की चाबी हनुमान के पास थी, और वह म्यूजियम की हर चीज के बारे में जानता था। मेरी अन्वेषक दृष्टि जानती थी कि इस म्यूजियम की चीजों के सहारे कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। म्यूजियम की ही तरह यहां का पुस्तकालय भी बहुमूल्य और दुष्प्राप्य पुस्तकों से भरा था। मुझे इस बात का अफसोस था कि इतनी सारी चीजें न तो कोई देखता था और न ही पढ़ता था। सही तौर पर कहा जाए तो सिर्फ हनुमान ही इन पुस्तकों का विदग्ध पाठक और संग्रहालय का आग्रही दर्शक था; क्योंकि उसके प्रत्येक अलमारी खोलकर किताबें अथवा दर्शनीय वस्तु दिखाते वक्त मैं समझ जाता था कि वह इन सभी चीजों और पुस्तकों के प्रत्येक पृष्ठ से भली-भांति वाकिफ है। किंतु हमें कोई चीज दिखलाते वक्त हनुमान जो बातें कहता था, उनमें ज्ञान का दंभ नहीं था, बल्कि एक अतिरिक्त दीनता और नम्रता थी। स्वामीजी के प्रति अपनी नम्रता जाहिर करने के लिए उसने अपने आपको और भी संकुचित कर लिया था। एकांत कमरे में मुझे भागवत पुराण का मर्म समझाने वाला हनुमान कोई और था, और इस वक्त का व्यक्ति स्वामीजी का आश्रयप्राप्त एक नौकर भर था।

पुस्तकालय और संग्रहालय दिखाने के बाद हनुमान हमारे लिए खाना लाने चला गया। आश्रम की शिक्षा-दीक्षा, रीति-नियम, खान-पान सब प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुकूल थे।

Digitized by srujanika@gmail.com

और हमारे खाने में नमक नहीं था। मैं संभवतः संन्यास अपनाने की उम्मीद में, नमक मांगे वगैर खाना खाने लगा। डेरेक ने भी निर्विकार रूप से अपनी थाली साफ कर दी। खाना खा लेने के बाद स्वामीजी डेरेक के साथ अपने कमरे में चले गये और कमरे का दरवाजा भीतर से बंद कर लिया। इस समय मुझे हनुमान से बातचीत करने में बहुत आनन्द आता, लेकिन वह भी वहां से गायब हो गया था। इसलिए मैं अपना कैमरा लेकर हिरन और मोरों की तसवीरें खींचने बगीचे की ओर चला गया।

एक मोर के पीछे बहुत देर तक भागने के बाद भी मैं उसका फोटो नहीं खींच सका, इसलिए अंत में इस नतीजे पर पहुंचा कि भागवत पुराण के पृष्ठ पर बना मोर ही मेरे सामर्थ्य के अंतर्गत है। फिर इस बात को एक व्यापक नियम बनाकर सोचा कि हम, विद्वान लोग वास्तविक विषय को छोड़कर उसके गौण प्रतिरूप के पीछे ही लगे रहते हैं। इस वक्त मोर मुझसे बहुत दूर जाकर अपने पंखों को फैलाकर नाचने लगा था। मैंने सिर उठाकर ऊपर की ओर देखा, आकाश बादलों से घिर गया था। मोर के पीछे और कुछ दूर दौड़ने के बाद मैं एक पेड़ के नीचे बैठ गया। धूप अब खत्म हो चुकी थी। आकाश के बादल, पेड़ की छाया, और आसन्न बारिस की संभावना ने एक शांत वातावरण पैदा कर दिया था। इस अवस्था में पेड़ के नीचे बैठे-बैठे न जाने कब मेरी आंख लग गयी, जान नहीं पाया। हो सकता है, मेरी आंखें बहुत ही कम समय के लिए लगी हों; किंतु इन कुछ ही पलों में आंख मूंदकर मैंने एक सुखद सपना देखा। मैंने देखा—आश्रम की सारी लड़कियां मोरनी बनकर, नीली साड़ी और सफेद ब्लाउज पहने धूप में दौड़ रही हैं। उनके पीछे-पीछे अजीब-सी पोशाक पहने, हाथ में कैमरा लिये डेरेक छलांग लगाता दौड़ रहा है; और यह दृश्य देखकर पेड़ की चोटीवाली डाल पर बैठा हनुमान जोर-जोर से हंस रहा है।

Digitized by srujanika@gmail.com

सपना पलभर में टूट गया। आंख खुलने पर देखा—आश्रम की एक बारह-तेरह साल की लड़की मेरे करीब बैठी हुई है। मैं उठा और उससे बातें करने लगा। यहां के कन्याश्रम के नियम विचित्र थे। जो लड़कियां यहां पढ़ने आती थीं, उन्हें पढ़ाई खत्म न होने तक घर जाने की अनुमति नहीं थी। इसीलिए एक बार आने के बाद, दस-बारह साल तक पढ़ाई समाप्त करके ही लड़कियां घर लौटने की सुविधा पाती थीं। बीच-बीच में उनके परिवार के लोगों को उनसे मिलने की छूट थी। लेकिन अधिकांश छात्र-छात्राएं दरिद्र परिवार के थे और काफी दूर से आये थे; इसलिए एक बार आश्रम में आने के बाद वे अपने परिवार से पूरी तरह कट जाते थे। लड़कियों को बाहर नहीं जाने दिया जाता था, और इन सभी विषयों में स्वामीजी का नियंत्रण अति कठोर था।

वह लड़की अत्यंत सुखी होने के साथ ही खूब दुःखी भी जान पड़ती थी। मैं उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करूं अथवा उसके सुख का भागी बनूं, कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा था। मैंने उस लड़की से हनुमान को बुलवा भेजा, और उसी वक्त मुझे मालूम हुआ कि हनुमान इस आश्रम में 'ब्रह्मचारी' के नाम से जाना जाता है। कुछ ही देर के अंदर ब्रह्मचारी अतिप्रसन्न मुद्रा में आकर मेरे पास बैठ गया। मैंने उससे आश्रम के स्वामीजी और उसके बारे में पूछा।

स्वामी धर्मानंद किसी धनी परिवार की एकमात्र संतान थे। सोलह साल की उम्र में उन्होंने घर त्याग दिया था। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद, अपनी सारी संपत्ति खर्च करके उन्होंने यह आश्रम बनवाया था। आगे चलकर अन्य लोगों की सहायता से आश्रम का विकास हुआ था। प्राचीन भारत के धर्म और संस्कृति के बारे में स्वामीजी का अगाध ज्ञान था, और उन्होंने स्वयं कई धर्मग्रंथों की टीका भी लिखी थी। यह गुरुकुल आश्रम स्वामीजी

Digitized by srujanika@gmail.com

के प्राचीन भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष प्रमाणित करने का एक साधन था, जिसके लिए स्वामीजी ने आश्रम में कठोर नियमों का प्रचलन किया था। यदि कोई सामान्य-सा नियम भी उल्लंघन करता तो स्वामीजी विचलित हो उठते थे। किस तरह आश्रम नियमानुसार चलेगा, इसके लिए वे स्वयं प्रयत्नशील रहते थे और आश्रम से कभी बाहर नहीं जाते थे। कन्याश्रम और छात्रों का आश्रम एक ही अहाते में होने पर भी इन दोनों के बीच किसी तरह का संपर्क नहीं था। बीच में एक ऊंची दीवार थी, जिस पर कीलें गड़ी थीं।

आश्रम के इतिहास में सिर्फ एक ही बार चारित्रिक उल्लंघन हुआ था। पूरी सतर्कता के बावजूद एक छात्र और एक छात्रा में प्यार हो गया था। रात को कन्याश्रम का फाटक बंद रहने के कारण लड़की को ही दीवार फांदकर लड़कों के आश्रम में आना पड़ा था और इसके बाद वे दोनों आश्रम छोड़कर भाग गये। दो दिन बाद पुलिस उन दोनों को लाकर आश्रम में पहुंच गयी। उन दोनों को कई तरह से दंडित एवं पीड़ित किया गया था। आखिर में एक सभा में लड़की से अपनी गलती स्वीकार करने को कहा गया था। उस वक्त तक वह लड़की पूरी तरह टूट चुकी थी और सभी को यह दृढ़ विश्वास था कि लड़की अपनी गलती मान लेगी। लेकिन लड़की ने बिना किसी हिचकिचाहट के कहा, कि उसने जो कुछ भी किया है, ठीक किया है। स्वामीजी का चेहरा गुस्से से तमतमा गया; उनकी आंखें लाल हो गयीं। उन्होंने इस लड़की को कई तरह के शाप दिये। किंतु वे दोनों फिर चले गए। इस बार रात को दीवार फांदकर नहीं, बल्कि दिन-दहाड़े, सबके सामने। उनके चले जाने के बाद आश्रम में कुश का पुतला बनाकर उनका दाह-संस्कार किया गया। बीच की दीवार पर ज्यादा बड़ी और नुकीली कीलें लगा दी गयीं तथा आश्रम के नियमों को और भी

Digitized by srujanika@gmail.com

सख्त कर दिया गया।

ये सारी बातें ब्रह्मचारी मुझसे सहज रूप से कहता जा रहा था, जैसेकि इन सारी घटनाओं की नैतिकता के बारे में उसकी अपनी कोई राय नहीं थी। आश्रम से भागे लड़का-लड़की के व्यवहार अथवा स्वामीजी के क्रोध को लेकर ब्रह्मचारी में कोई सहमति अथवा विरोध नहीं था। वह इस घटना का वर्णन भर कर रहा था। स्वयं ब्रह्मचारी भी इसी आश्रम का छात्र था। वह एक गरीब परिवार के तीन भाइयों में सबसे छोटा था। संस्कृत का अच्छा ज्ञान होने की वजह से तथा उसके भाइयों द्वारा स्कूल का खर्च न चला पाने के कारण उसे स्वामी धर्मानंद के आश्रम में भेज दिया गया था। यहीं पर उसने अपनी सारी शिक्षा समाप्त की थी और उसके बाद अपने ही प्रयत्नों से पुस्तकालय में बैठकर पढ़ा करता था। स्वामीजी की इच्छा थी कि उनका पुस्तकालय अपने प्रांत का सबसे बड़ा पुस्तकालय हो, और इसके लिए वे काफी पैसा खर्च करके बहुत-सी किताबें मंगवाते थे। ब्रह्मचारी ही इन किताबों का सदुपयोग करता था। मुझे एकाएक याद आया कि स्वामीजी की 'शुभ चिह्न' वाली पुस्तक भी शायद ब्रह्मचारी के शोध का ही परिणाम है, जबकि लेखक के रूप में नाम उस पर स्वामीजी का ही लिखा था। इस बारे में पूछने पर उसने कहा कि पुस्तक की विषयवस्तु क्या है, यह बात ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। बातों ही-बातों में ब्रह्मचारी ने यह भी बताया कि स्वामीजी उसके पिता के समान हैं।

पिता-पुत्र के इस रिश्तेवाली बात ने मेरी बहुत-सी उलझनों को सुलझा दिया था। आश्रम का सारा काम करने के बावजूद ब्रह्मचारी कोई पारिश्रमिक नहीं लेता था। स्वामीजी अपनी इच्छा से उसे जब जो कुछ दे देते थे, वह ले लेता था। उसका अपने परिवार से कोई संपर्क नहीं था। आश्रम ही उसका सारा

Digitized by srujanika@gmail.com

संसार था, जिसके एकमात्र कर्ता-धर्ता स्वामीजी ही थे। आश्रम के सहारे ब्रह्मचारी सभी तरह की चिंताओं से मुक्त था।

आश्रम के बगीचे से लौटकर हम स्वामीजी के पास आए। ठीक उसी क्षण डेरेक और स्वामीजी कमरे से निकलकर बाहर खड़े हुए थे। स्वामीजी हमें कन्याश्रम का अध्ययन-गृह दिखलाने चले। ठीक उसी समय धूलभरी आंधी चल पड़ी। पल-भर में सारा आसमान एक अजीब-से धूसर रंग से भर गया। चारों ओर धूल-ही-धूल—आश्रम के मकान, बगीचा, हिरन और मोर सबके रंग अचानक गायब हो गये; मानो सबके सब एक काले-सफेद 'आउट ऑफ फोकस' फोटो बन गए। मैंने सोचा था कि स्वामीजी के साथ हम पुनः कमरे में लौट आएंगे। किंतु स्वामीजी आगे ही बढ़ते गए, और हम उनके साथ कन्याश्रम का श्रेणीगृह देखने गए।

अब छोटी-छोटी बूंदें पड़ने लगी थीं और धूलभरी आंधी थम चुकी थी। आसमान एकदम स्याह हो चुका था, और बीच-बीच में बिजली चमक रही थी। हमें सब कुछ दिखलाते-दिखलाते प्रार्थना का समय हो गया। थोड़ी-थोड़ी बारिश होने के बावजूद सभी कन्याएं आश्रम के विस्तृत आंगन में कतार बांधकर बैठ गयीं। प्रार्थना शुरू ही हुई थी कि मूसलाधार बारिश होने लगी; किंतु प्रार्थना में कोई रुकावट नहीं आयी, हालांकि बारिश और बिजली की गड़गड़ाहट में प्रार्थना के स्वर पूरी तरह समा गए थे। आंगन में पानी की धारें बहने लगीं, परंतु छात्राएं फिर भी कीचड़ में बैठी, बारिश में भीगती हुई गाने में मग्न थीं। हम लोग आश्रम के बरामदे में बैठे थे, और मैं इस मूसलाधार बारिश में छात्राओं के चेहरे की मुद्रा देखने में सफल नहीं हो पाया था। इस एकांत आश्रम में, धूलभरी आंधी और बारिश में प्रार्थनारत सैकड़ों कन्याओं का दमित स्वर, मुझे वास्तविकता से भिन्न अनुभव दे रहा था।

Digitized by srujanika@gmail.com

प्रार्थना समाप्त होने के बाद हम पुनः स्वामीजी के कमरे में लौट आए। हमारा काम खत्म हो चुका था; और उस बारिश में वहां से किस तरह लौटें, इसी बात को लेकर हम चिंतित थे। उस दिन डेरेक का भारत में आखिरी दिन था। अगली सुबह के प्लेन से उसे अमेरिका लौटना था।

बारिश की रफ्तार कुछ धीमी होते ही हम आश्रम से चल पड़े। प्रणाम करके विदा लेते वक्त स्वामीजी ने ब्रह्मचारी को भी हमारे साथ भेज दिया। आश्रम में नये मकान बनाने के लिए सीमेंट की आवश्यकता थी, और इसीलिए वह हमारे साथ शहर जा रहा था।

बारिश की वजह से रास्ता कुछ ज्यादा ही खराब हो गया था, इसीलिए हमारी गाड़ी और भी धीरे चल रही थी। स्वामीजी के साथ लंबी बातचीत करने के बावजूद डेरेक विशेष संतुष्ट नहीं लग रहा था। वह चिंतित था और चुपचाप बैठा था। कुछ देर बाद उसने एकाएक ब्रह्मचारी से पूछा—क्या तुम संन्यास की स्थिति में पहुंच चुके हो? ब्रह्मचारी मुसकराया। उसने कहा—मेरे सफेद कपड़े तो देख रहे हैं ना? यदि संन्यास की प्राप्ति हो गयी होती, तब तो मैं गेरुआ कपड़े पहनता! नहीं, अब मैं संन्यासी नहीं बन सकता।

ब्रह्मचारी ने बताया कि वह किस तरह सारे नीति-नियमों को पूरी तरह मानकर नहीं चल सका। यहां तक कि सिर के बाल-जैसी सामान्य-सी बात भी संभाल न सका। स्वामीजी का सिर हर वक्त घुटा हुआ रहता है; किंतु कभी ब्रह्मचारी के बाल बढ़े हुए होते हैं तो कभी दाढ़ी। खाने-पीने में भी वही बात—आश्रम में रहते वक्त तो वह वहीं का खाना खाता है; किंतु जब कभी बाहर जाता है, तो नियम टूट भी जाता है – बिना नमक की चीजें बाजार में नहीं मिलतीं, और ब्रह्मचारी बिना हिचक सब कुछ खा

Digitized by srujanika@gmail.com

लेता है। यहां तक कि एक दिन उसने अपने एक मित्र के घर पर मछली की तरकारी से आलू निकालकर खा लिया था, क्योंकि उनके घर में खाने को और कुछ नहीं था। और संयम की बात ? पच्चीस साल तक नंगे पैर रहने के बाद इसी साल उसने एक जोड़ी हवाई चप्पल खरीदी है। नहीं, फिर भी वह स्वामीजी की तरह संन्यासी नहीं बन सकता। स्वामीजी ने कभी किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया था। वे एक वास्तविक संन्यासी थे।

इतना कहने के बाद ब्रह्मचारी चुप हो गया। डेरेक के पास पूछने को और कोई प्रश्न नहीं रह गया था। शायद वह संन्यास-प्राप्ति के लिए कोई अन्य विकल्प खोज रहा था, अथवा अगले दिन अपने अमेरिका लौट जाने की बात सोच रहा था। मैं स्वयं निश्चित नहीं कर पा रहा था कि संन्यास के लिए तरकारी में नमक न खाना, मेरे लिए कहां तक संभव होगा।

बारिश का प्रकोप थमा नहीं था और हमारी गाड़ी अति मंथर गति से बढ़ती चली जा रही थी। तब तक अंधेरा भी हो गया था। ड्राइवर ने हठात् कहा कि अब गाड़ी चलाना संभव नहीं है। हमने किसी तरह से उसे समझा-बुझाकर रास्ते में किसी भी कस्बे तक गाड़ी ले चलने को कहा। कुछ देर तक वहां विश्राम करके बारिश थमने की प्रतीक्षा की जा सकती थी। बहुत कहने के बाद ड्राइवर गाड़ी चलाने को राजी हुआ, किंतु वहां तक पहुंचने के बीस मिनट के रास्ते में पूरे डेढ़ घंटे लग गए। हमारे पहुंचने तक वहां की सारी दुकानें बंद हो चुकी थीं। अब भी बारिश खूब जोरों की हो रही थी, और ब्रह्मचारी हम लोगों को गाड़ी में ही छोड़कर बारिश में भीगते हुए, अपने किसी परिचित का घर ढूंढ़ने चला गया। अंत में, कुछ देर बाद हम भी उसी सज्जन के घर जा पहुंचे। मकान बहुत छोटा था और वे सज्जन उस वक्त बुखार में पड़े थे। हम लोग उनके बाहरवाले कमरे में सोने की

Digitized by srujanika@gmail.com

कोशिश करने लगे। ड्राइवर गाड़ी में ही सो गया। बारिश नहीं थमी।

कुछ ही देर में ब्रह्मचारी, अपने उन्हीं भीगे कपड़ों में ही, नंगे फर्श पर खर्राटे भरने लगा। डेरेक और मैं उनींदे ही रहे, क्योंकि इस तरह के एक नये परिवेश में सोना संभव नहीं था। कई घंटे इसी तरह काटने के बाद बारिश थम गयी और आकाश में चांद भी दिखने लगा। डेरेक और मैं बाहर आए। ड्राइवर गाड़ी के बाहर खड़ा सिगरेट पी रहा था। उसे भी नींद नहीं आयी थी। हमने उसी पल चलना निश्चित किया, क्योंकि सुबह डेरेक की फ्लाइट थी। हम ब्रह्मचारी को जगाने के लिए अंदर गए। वह जाग चुका था, उसने कहा—"आप लोग चले जाइए। मैं अपने मित्र की तबियत ठीक होने पर जाऊंगा।" डेरेक ने उसे सीमेंट के परमिट की बात याद दिलायी, किंतु ब्रह्मचारी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। उससे विदा लेने के बाद गाड़ी में आकर बैठते वक्त मैंने डेरेक से कहा—"नहीं, अब ब्रह्मचारी संन्यास तक नहीं पहुंच सकता।"

रात्रि की रहस्यमय घड़ियों में, चांद की चांदनी में एक अपरिचित शहर को छोड़कर चले जाना ही इस कहानी का उपसंहार होना चाहिए था। किंतु हमारे साथ एक और भी नाटकीय घटना घटनी थी। हम अपने शहर पहुंचने ही वाले थे कि ड्राइवर स्टियरिंग पर ऊंघने लगा, और गाड़ी एक पेड़ से जा टकरायी। मैंने अपने हाथ-पैरों को टटोलकर देखा, सब सही-सलामत थे। मैं गाड़ी से उतरा; डेरेक भी दूसरी ओर से उतरा। अब तक ड्राइवर कराहने लगा था, किंतु हमें मालूम था कि उसे कुछ भी नहीं हुआ था; हमसे गाली न सुनने के लिए वह दिखावा मात्र कर रहा था। फिर भी हमने उसे गाली दी, और जब देखा कि गाड़ी अब आगे नहीं जा सकती, तो उसके भाड़े का हिसाब

Digitized by srujanika@gmail.com

नक्की कर दिया। कुछ समय तो उसने पैसों के बारे में हुज्जत की, और इसके बाद अपनी काल्पनिक चोट को याद करके फिर कराहने का नाटक करने लगा।

सवेरा हो चुका था और इस वक्त शहर पहुंचने के लिए और कोई साधन नहीं था। फिर भी एयरपोर्ट ज्यादा दूर नहीं था। डेरेक ने अपना थैला उठाया। मैं काफी थक चुका था, एवं दूसरे रास्ते से विश्वविद्यालय काफी करीब था। मानो इस वक्त हम एक-दूसरे से पूर्णतः अपरिचित थे। यहीं से डेरेक को विदा करके मैंने हॉस्टल जाना निश्चित किया। डेरेक को एयरपोर्ट का रास्ता दिखलाकर उससे हाथ मिलाने के बाद, अपना रास्ता पकड़ने से पहले मैं घड़ीभर के लिए चौराहे पर खड़ा रहा। डेरेक तेजी से कदम बढ़ाता चला जा रहा था। लेकिन मैं जिसे देख रहा था, वह अजीब-सी पोशाक पहने हुए दाढ़ीवाला व्यक्ति नहीं था; वह पासपोर्ट में लगे फोटोवाला डेरेक था—जोकि सूट पहनकर हाथ में ब्रीफकेस लिये हुए, अमेरिका में अपने शहर की गगनचुंबी अट्टालिकाओं के बीच से होकर जनाकीर्ण रास्तों पर आगे बढ़ता चला जा रहा था।

Digitized by srujanika@gmail.com

असलियत

पद्मधर ने हाथ उठाकर फिर एक बार घड़ी देखी। उसने जिसे आधे घंटे की अवधि समझा था, वास्तव में वह सिर्फ सात मिनट थे। मानो समय उससे विश्वासघात करके खूब धीमी गति से चल रहा था। उसने अपने वकील की ओर देखा, किंतु वह भी इस बीच कहीं और चला गया था। उसके सामने अदालत की कार्यवाही पहले की तरह अविराम चल रही थी, एवं उस गवाह की गवाही अभी भी खत्म नहीं हुई थी।

यह पद्मधर की दूसरी तारीख थी। मुकदमे का नतीजा पहले से मालूम था। उसके वकील ने उसे बता दिया था कि वह किराये का मकान उसे छोड़ना ही पड़ेगा; लेकिन वह मुकदमा चलाकर मकान छोड़ने की अवधि दो-तीन साल तक टाल सकता है। पद्मधर यह भी जानता था कि दो-तीन साल से पहले ही उसका तबादला यहां से कहीं और हो गया होगा, और फिर उसे यहां मकान की जरूरत भी नहीं रह जायगी। यह सब जानते हुए भी पद्मधर को इस न्याय-विचार के विभिन्न पर्यायों से होकर गुजरना पड़ रहा था।

मुकदमे को किस तरह विलंबित किया जा सकता है, इस कला में उसका वकील निपुण था। वकील का कहना था कि पद्मधर की भलाई इसी में है कि मुकदमे की तारीखें अधिक-से-

Digitized by srujanika@gmail.com

अधिक हों। इसीलिए वकील बीच-बीच में आकर पद्मधर से कहा करता था—आज हमें ऐफ़िडेविट बनवाना पड़ेगा, अथवा आज तबियत खराब के बहाने नयी तारीख के लिए दरखास्त देनी होगी। इस अस्वस्थता को सिद्ध करने के लिए पद्मधर को उस दिन कॉलेज से भी छुट्टी लेनी पड़ती थी।

मुकदमा दायर होने के छः महीने तक कोई तारीख नहीं मिली थी। पद्मधर जानता था कि यह उसके वकील की बहादुरी थी। वकील बीच-बीच में आकर विभिन्न तरह के कागज़ात पर उसके दस्तखत ले जाया करता था। जब तक पद्मधर को कचहरी नहीं आना पड़ा था, वह बहुत खुश था। आखिरकार वह समय भी आ पहुंचा, जबकि उसका वकील मुकदमे की तारीख और आगे नहीं बढ़वा सका। एक दिन शाम को वकील का आदमी पद्मधर को सूचना दे गया कि कल हमें कचहरी चलना है।

यह पद्मधर के कचहरी जाने का प्रथम अनुभव था। सुबह खा-पीकर कॉलेज से छुट्टी लेकर वह वकील के घर गया, और वहां से वे लोग कचहरी गये। कचहरी पहुंचकर वकील ने फिर कई तरह के कागजात पर उसके दस्तखत लिये। जिस जज के पास उसका मुकदमा था, उनकी अदालत ऊपरी मंजिल पर थी। सीढ़ियां चढ़ने के बाद उसे अदालत में बैठाकर वकील किसी दूसरे काम से चला गया। जज नहीं आए थे, किंतु पद्मधर ने देखा कि अदालत के कार्य में कोई व्यतिक्रम नहीं था। गवाह, पुलिस, मुज़रिम, क्लर्क, वकील, मुअक्किल सभी व्यस्त-से इधर-उधर आ-जा रहे थे, एवं पगड़ीधारी चपरासी बीच-बीच में ताक-की-ताक फाइलें इधर-उधर कर रहा था। विभिन्न प्रकार के लोग विभिन्न प्रकार के कागजों पर दस्तखत कर रहे थे। पद्मधर को यह एक मेले की तरह लग रहा था, जहां न्याय मांगने आये हुए लोग

Digitized by srujanika@gmail.com

अंगूठे का निशान, कोर्ट-फी, स्टाम्प कागज, तारीख, वकालत-नामा और समन-जैसी सामान्य चीजें खरीदकर चले जाते थे।

पहली तारीख पर पद्मधर को सारा कुछ नया-नया-सा लग रहा था एवं कचहरी के कार्यकलाप उसे सिर दर्द नहीं लग रहे थे। जज साब वहां नहीं थे, यद्यपि किसी ने यह बात ठीक रूप से उन्हें बतलायी नहीं थी। लोग-बाग आपस में बतिया रहे थे कि जज साब पहुंच चुके हैं और अपने चेम्बर में हैं। यह सुनकर पद्मधर को लगा था कि हाकिम खून, डाका, बलात्कार-जैसे किसी गंभीर मुकदमे के कागजात लेकर अंदर व्यस्त है। इस तरह के एक जज की अदालत में अपने भाड़े के मकान-जैसा अति-घटिया मुकदमा दायर करने को लेकर वह मन-ही-मन शर्मिदा हो रहा था।

ठीक उसी समय हांफता हुआ उसका वकील आ पहुंचा। उसके होंठों से पान का पीक बहा जा रहा था, एवं पसीने से भीग-कर उसका काला कोट छापेदार दिख रहा था। उसका मुकदमा शुरू होनेवाला है, सोचकर पद्मधर तैयार होकर बैठ गया। लेकिन वकील ने उसे यह सूचना दी कि आज जज साब नहीं आएंगे। इतना कहकर वकील लिपिक के पास गया और अगली तारीख तय करा लाया। अपने छापेदार कोट से अदृश्य धूल झाड़ते हुए उसने पद्मधर के कान में अगली तारीख फुसफुसायी, और पुन: व्यस्त-सा वहां से निकल गया।

अदालत से निकलते समय पद्मधर ने जज साब के तथा-कथित चेम्बर में झांककर देखा—वह कमरा संकीर्ण, अंध-काराच्छन्न और अनाप-शनाप भरा हुआ था। कमरे के टेबुल पर पुराने होकर पीले पड़े बंडल-के-बंडल कागज, खाली सुराही, फूटा हुआ गिलास, अधसोयी-सी दावात एवं कई वर्ष पहले का फटा कैलेंडर इत्यादि अस्त-व्यस्त पड़े थे। पास ही रखी कुर्सी के

Digitized by srujanika@gmail.com

तीन पैर थे, एवं कई ईंटें एक-पर-एक रखकर चौथे पैर का काम चलाया जा रहा था। इस गुप्त कमरे को देखने के बाद जज साब की क्षमता के बारे में पद्मधर को कुछ संदेह हुआ। लेकिन उनके बारे में अपने वकील के मुंह से सुने सर्वोत्तम विशेषणों का स्मरण कर, पद्मधर ने अपने मन से सारे संदेहों को दूर कर यह सोचना शुरू किया, कि इस छोटे-से कमरे के दूसरी ओर एक सुंदर और मनोरम प्रकोष्ठ है, जोकि उनका खास कमरा है।

अगली तारीख को पद्मधर की बस छूट गयी और वह कचहरी देर से पहुंचा। खूब संकोच करते हुए वह अपने वकील को ढूंढ़ने लगा; कारण, मुकदमे की हार-जीत के अलावा उसके देरी से आने के कारण वकील उससे नाराज़ भी हो सकता है, इस बात से वह काफी चिंतित था। इत्तफाक से वकील भी अभी तक नहीं आया था। पद्मधर आश्वस्त हुआ, और अदालत की पिछली बेंच पर बैठकर उस समय चल रहे मुकदमे के प्रवाह में अपने को शामिल करने की कोशिश करने लगा। विचारक न्यायाधीश अपने आसन पर विराजमान थे। उनके सिर पर बिजली का पंखा तेज आवाज करता हुआ घूम रहा था। एवं प्रतिवादी पक्ष का वकील खूब ऊंची आवाज में जिरह कर रहा था। पद्मधर को लगा, मुकदमा काफी दिलचस्प है; क्योंकि थोड़ी-थोड़ी देर बाद सतीत्व, बेवफाई और तलाक-जैसे शब्द गूंज रहे थे, एवं उपस्थित दर्शकों की हंसी को तेज कर रहे थे।

कठघरे में एक छोटा-सा लड़का खड़ा था, जो इस परिवेश में काफी परेशान और उलझा हुआ दिख रहा था। विचारक क्रोधित न होने पर भी उसकी ओर गंभीरता से देख रहे थे, जिसकी वजह से वह लड़का और भी संकुचित होने लगा था। प्रतिवादी पक्ष का वकील (पद्मधर का वकील नहीं) एक पारंगत धनुर्धर की तरह प्रश्नों के बाण छोड़ रहा था, जिसे एक होशियार

Digitized by srujanika@gmail.com

गवाह सहज ही टाल देता; किंतु उस लड़के को वे बारंबार क्षत-विक्षत कर रहे थे। पद्मधर अभी तक इस मुकदमे में अच्छी तरह रम नहीं पाया था; लेकिन यकायक हंसी के तेज विस्फोट के बाद वह चौकस होकर बैठ गया।

"व्रतो बुझा देने के बाद तुम्हारी मां और उस व्यक्ति ने क्या किया?"—वकील ने उस लड़के से पूछा।

मानो विपक्ष का वकील इसी सवाल की प्रतीक्षा में था; यकायक खड़े होकर उसने अपना भाषण शुरू कर दिया—"मानवीय विचारपति, इत्यादि-इत्यादि···"दर्शकगण एक रोचक प्रसंग से वंचित होकर हताश-से लगने लगे, एवं क्षोभसूचक शब्दों से कमरा गूंज उठा। इस तरह हुए इंटरवल का फायदा उठाते हुए पद्मधर सीढ़ियों से होता हुआ नीचे उतर आया। सौभाग्य से सीढ़ियों के नीचे उसका वकील खड़ा था; उसने पद्मधर को बताया कि उसका मुकदमा देर से शुरू होगा।

समय काटने के लिए पद्मधर, कचहरी के सामने लगी चलती-फिरती दुकानों के आस-पास चहलकदमी करने लगा। यहां जो चीजें बिक रही थीं, वे सब अज़ीब तरह की थीं, जोकि अन्य साधारण जगहों पर नहीं बिकती थीं। उदाहरण के लिए, एक दुकान में शिलाजीत, मृतसंजीवनी, कायाकल्प की गोलियां इत्यादि आयुवर्द्धक और शक्तिवर्द्धक दवाइयां थीं, जिनका विक्रेता स्वप्नदोष, ध्वजभंग आदि के बारे में भाषण दे रहा था। उसका एक सफल प्रतिद्वंद्वी बाघ का नाखून, ऊंटनी का दूध, सांडे का तेल इत्यादि दुर्लभ चीजों का गुणगान कर रहा था। उसीके पास सामुद्रिक विद्यावाले की दुकान थी, जहां इकहरी रेखा से भरी हथेली के बड़े-से चित्र पर कतार में रखे कागजों में से एक-एक करके उठाकर एक तोता ग्राहकों का भाग्य-निर्णय कर रहा था। विषनाशक औषधि का विक्रेता अपनी महौषधि की उपा-

Digitized by srujanika@gmail.com

देयता साबित करने के लिए एक पालतू बिच्छू से खुद को घायल और मुर्दा कर लेता था, और तुरंत संजीवनी प्रयोग करवाकर 'पुनर्जीवित' हो जाता था। दूसरी ओर एक परोपकारी दुकान-दार हीरा, नीलम, मोती, लाल, पद्मराग, गोमेद इत्यादि बहुमूल्य पत्थर पानी के दाम बेच रहा था। पद्मधर को इन सब चीजों की आवश्यकता न होने की वज़ह से, वह पास की किताबों की दुकान में गया, जहां अनेक अश्लील और कामोद्दीपक किताबों के ताक के नीचे बहुत-सी पुरानी किताबें इकट्ठी थीं। काफी तलाशने के बाद, परिस्थिति से मेल खा रहे शीर्षक की एक किताब उसने खरीदी, जिसका नाम था 'द ट्रायल' एवं जिसके लेखक कोई फ्रांज काफ्का थे।

अदालत की पिछली बेंच पर उत्सुक दर्शकों के बीच बैठकर पद्मधर उस किताब को पढ़ने का प्रयास करने लगा; किंतु सफल नहीं हो पाया। पहले से चल रहे मुकदमे का प्रवाह अब चित्ता-कर्षक नहीं था, एवं अधिकांश दर्शक जा चुके थे। वकील (पद्मधर का वकील नहीं) अपने भोथरे बाण निस्पृह रूप से चला रहा था, जिन्हें गवाह अनायास ही टालता चला जा रहा था। इस समय कठघरे में एक डाकिया खड़ा था, और सवाल उस औरत को भेजे गए प्रेमपत्रों के बारे में था। विपक्ष का वकील डाक-विभाग की नियमावली के बारे में पारिभाषिक सवाल उठा रहा था, जिससे सारा माहौल नीरस हो चुका था। किताब बंद करके हाथ उठाकर पद्मधर ने फिर एक बार घड़ी देखी। वह जिसे आधे घंटे की अवधि समझा था, वास्तव में वह सिर्फ सात मिनट थे।

समय काटने के लिए इस बार पद्मधर ने अपनी कल्पना का सहारा लिया। जज साब के गंजे सिर पर उसने एक विचारक का विग लगा दिया और उनके ऊपर चल रहे पंखे को निकालकर उसकी जगह हाथ से खींचनेवाला पंखा लगा दिया, अदालत के

Digitized by srujanika@gmail.com

चपरासी को बरकंदाज़ की पोशाक पहना दी, डाकिया की खाकी वर्दी उतार कर उसके हाथ में एक झुनझुनेदार डंडा पकड़ाकर पुराने जमाने का 'रनर' बना दिया, वकीलों के चेहेरे पर लाल रंग लगाकर उन्हें गोरा साहब बना दिया, एवं अदालत के चारों तरफ घुड़सवार सैनिकों को तैनात कर दिया। अब मुकदमा सिपाही-विद्रोह के समय का था एवं तात्या टोपे की किसी चिट्ठी पर सवाल-जवाब हो रहा था।

इस पर भी पद्मधर को ज्यादा संतोष नहीं हुआ; कारण, सिपाही-विद्रोह के बारे में उसका ज्ञान काफी सीमित था। वह घटना को और भी समसामयिक बनाने की कोशिश करने लगा। इसीलिए उसने विचारक के सिर से नकली बाल निकाल लिये और बिजली के पंखे का स्विच ऑन कर दिया। अदालत के लोगों को उसने उनकी पोशाक लौटा दी। अब वकील डाकिये से सवाल कर रहा था—"नक्सलबाड़ी से आया वह पत्र तुमने किसे दिया था?" मानो विपक्ष का वकील इसी सवाल की प्रतीक्षा में था। यकायक खड़े होकर उसने अपना भाषण शुरू कर दिया—"माननीय विचारपति, इत्यादि-इत्यादि…" उसी वक्त अदालत में बम फूटने की आवाज हुई। शोरगुल मचाते हुए बहुत से लोगों ने अदालत को घेर लिया। हाथों में पिस्तौल लिये हुए कुछ लोग जज के चेम्बर से बाहर निकले और चिल्लाकर बोले—"इस आइन-कानून और विचार-प्रणाली में हम विश्वास नहीं करते…"

पद्मधर घटनाओं को और भी साफ-साफ देखने की कोशिश करने लगा; किन्तु उसकी थकान, प्रतीक्षा के कारण हो रही बोरियत, ऊपर पंखे का शोर, दोपहर की गर्मी, सबने मिलकर उसकी आंखें बंद कर दीं। वह कमरे की बेंच से टिककर बैठ गया। अब उसने देखा कि जज साब एक कतपुतली बन गए हैं; उनके हाथ के डोरे छत की ओर जाकर अदृश्य हो गये हैं। चाबी भरे

Digitized by srujanika@gmail.com

पुतलों की तरह दोनों वकील अभिनय कर रहे हैं, और कठघरे का व्यक्ति नींद में सोता हुआ अर्थहीन बातें कह रहा है। चेम्बर से गधे की 'ढेंचू-ढेंचू' की आवाज आ रही है और छत पर गिद्ध मंडरा रहे हैं। खिड़कियों से काले-काले बादल घुसकर अदालत की कोठरी में चारों ओर छा गये हैं और सारा कुछ अंधेरे से ढक गया है।

किसी ने आकर पद्मधर को हिलाया और उसकी नींद खुल गयी। नींद खुलने पर उसने देखा कि हाकिम चले गए हैं और अदालत प्रायः जनशून्य है। काफी तलाशने के बाद भी वह अपने वकील को नहीं ढूंढ़ पाया, और अंत में उसी लिपिक से अपनी तीसरी तारीख ले ली। सीढ़ियों से उतरते वक्त अचानक उसे याद आया कि उसकी पत्नी ने नींद की दवा लाने को कहा था। अन्य सभी दुकानें बंद हो चुकी थीं, लेकिन किताब की दुकान अभी तक खुली थी। पद्मधर ने सुबह जो किताब खरीदी थी, उसे बेच डाला। उसने हिसाब करके देखा कि इस क्रय-विक्रय में उसका ज्यादा नुकसान नहीं हुआ था।

कोई जल्दी न होने की वजह से वह बस न लेकर पैदल ही घर की ओर चल पड़ा। उसने उस रोज भी कॉलेज से छुट्टी ली थी। उसकी छुट्टी की दरखास्त सही समय पर सही जगह पर पहुंची अथवा नहीं, इस बारे में इस वक्त वह कुछ चिंतित होने लगा; लेकिन आखिर में उसने तय किया कि अब इस बात में दिमाग खपाने से क्या फायदा! इस तरह कॉलेज से एक दिन की छुट्टी लेकर आना उसे बुरा नहीं लग रहा था। कॉलेज का प्रत्येक क्लास उसके लिए एक बोरियत की अनुभूति थी। उसे ऐसे विषय पढ़ाने को दिये जाते थे—जिनमें छात्रों की रुचि बिल्कुल नहीं थी। उसके क्लास लेते समय छात्र पूर्णतः अन्यमनस्क एवं आपस में बातचीत करने में मशगूल रहते थे। लेकिन पद्मधर यथासंभव

Digitized by srujanika@gmail.com

ऊंचे गले से अपना शिक्षण का दायित्व पूरा करता रहता था। ऐसे समय में उसे लगता था, मानो उसके और छात्रों के बीच कांच का एक पर्दा पड़ा है। कभी-कभी अपनी इच्छानुसार वह इस कांच को और भी मोटा और धुंधला कर देता था, जिससे विद्यार्थियों के चेहरे और उनका शोरगुल उससे और भी दूर हो जाता था।

कांच का एक कोना साफ करके पद्मधर ने उस वेंच की ओर देखा, जिस पर लड़कियां बैठी थीं। उसने अपने चेहरे की अभिव्यक्ति और भी कोमल एवं स्वर को और भी मुलायम बनाने की कोशिश की; किन्तु लड़कियां उस समय एक फिल्मी पत्रिका के पृष्ठ को लेकर किसी गंभीर आलोचना में व्यस्त थीं। अपनी असफलता का अहसास कर, कांच में एक छेद करके उसमें एक स्थायी झरोखा लगाने की इच्छा से पद्मधर निवृत्त हो गया, एवं फिर से अपने चेहरे और आवाज को उसने स्वाभाविक कर लिया।

उसके कॉलेज-जीवन की एकमात्र आनंददायक अनुभूति थी वसुधा। हालांकि वसुधा से उसका परिचय खूब सामान्य और साधारण-सा था, पर पद्मधर इस घटना को अपने जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घड़ी मानता था। घटना इस प्रकार थी कि कई साल पहले, ट्यूटोरियल क्लास समाप्त करने के बाद पद्मधर ने देखा, वसुधा क्लास से बाहर न जाकर अभी भी बैठी हुई है। वसुधा अनन्य सुंदरी नहीं थी एवं पद्मधर ने उसे पहले कभी गौर से देखा भी नहीं था। फिर भी खाली क्लास में एकाकी बैठी लड़की उसे असामान्य और रहस्यमयी लगी। यह उसकी पहली अनुभूति होने के कारण, बातचीत की शुरुआत कैसे की जाय—वह तय नहीं कर पा रहा था। उसकी हिचक को तोड़ते हुए उस लड़की ने पद्मधर की ओर एक पुस्तक बढ़ा दी और बोली—"मुझे यह पैराग्राफ जरा समझा देंगे?"

Digitized by srujanika@gmail.com

पद्मधर के सिर के भीतर सारा कुछ अस्त-व्यस्त हो गया। उसका गला सूख गया, पैर सुन्न हो गए और हाथ कांपने लगे। पैराग्राफ के सभी अक्षर जीवित होकर पृष्ठ पर मंडराने लगे। चेहरे पर अचानक जम आयी पसीने की बूंदों को हथेली से पोंछते हुए पद्मधर ने जो कुछ भी कहा, उन बातों का कोई अर्थ नहीं था। पुस्तक के उस कठिन पैराग्राफ की व्याख्या उसे और भी कठिन लगने लगी। लड़की का चेहरा कुछ शर्म और खुशी से खिल-सा उठा। पद्मधर के हाथ से अपनी पुस्तक लेकर वह क्लास से चली गयी। बस, इतना ही।

इस घटना को पद्मधर ने कई दिनों तक मन-ही-मन दुहराया। अब वह उस लड़की का नाम और पता जानता था, एवं यह जानकारी उसे सोचने में बहुत कुछ सहायक हो रही थी। घटना को फ्लैशबैक में देखते समय पद्मधर उसे बारंबार अच्छी तरह संपादन कर लेता था, एवं उस संवादविहीन चलचित्र को ढेर-सारे संवाद देकर सवाक् कर देता था। उदाहरण स्वरूप, वह वसुधा के उस क्लास में घुसने को एक नाटकीय प्रवेश का रूप देता था। वसुधा अधिक सुंदरी लगती थी एवं उसकी रूपसज्जा किसी फिल्म-अभिनेत्री से कम नहीं थी। क्लास में घुसते ही उसने पद्मधर को नमस्कार किया और ठीक उसके सामने आकर बैठ गई। कहने की आवश्यकता नहीं कि चित्र में पद्मधर ने अपनी सबसे सुंदर पोशाक पहन रखी थी, एवं उसके मुखमंडल पर एक अजीब-सी रौनक थी। कभी-कभी पद्मधर की इच्छा होती तो वह अपने क्लास-रूम को, बिना किसी दुविधा के एक मनोरम पार्क में बदल देता था।

क्रमशः पद्मधर अधिक साहसी होने लगा और वसुधा को, जिसे अब वह सिर्फ सुधा कहने लगा था, सिनेमा ले जाने में भी कोई संकोच नहीं किया। सिनेमा हॉल के अंधेरे में अब वह वसुधा

Digitized by srujanika@gmail.com

के हाथ पर हाथ रखता था, एवं परदे पर अभिनय करनेवाले नायक-नायिका को स्वयं और वसुधा के रूप में कल्पना करके खूब आनंदित होता था। वसुधा के साथ उसकी घनिष्ठता क्रमशः बढ़ने लगी। अंत में उसने वसुधा को लेकर किसी हिल-स्टेशन पर जाना निश्चित किया। उस वक्त वह अपने ट्यूटोरियल क्लास में अकेले बैठा था एवं विभिन्न जगहों की सुंदरता का तुलनात्मक चिंतन करते समय, तस्वीरों में देखे पेरिस शहर की बात भी भूला नहीं था।

इस समय रास्ते पर चलते हुए उसने फिर वसुधा को लेकर भ्रमण पर जाने की बात याद करने की कोशिश की। किन्तु काफी दिनों पहले ट्यूटोरियल क्लास में जो बात खूब सहज लगती थी, कचहरी में सारा दिन काटने के बाद थककर घर लौटते वक्त, शहर की संकीर्ण गली में वह कल्पना आसानी से बढ़ नहीं पा रही थी। बायीं तरफ की दवाई की दुकान की ओर देखना अस्वीकार करते हुए, दूर आसमान पर जल रही निअन-लाइट के प्रकाश में उसने किसी फिल्म के नायक-नायिका के नाम की ओर देखा। उसने खीजकर उस विज्ञापन के उन दो नामों को वहां से हटा दिया, और उनकी जगह पद्मधर-वसुधा लिख दिया। चलते-चलते कुछ संतोष के साथ उसने निअन के उस विज्ञापन को देखा, और इस बार उसमें से 'धर' एवं 'व' निकाल दिया। पद्म-सुधा में उसे कहीं कुछ खटक-सा रहा था, इसलिए उसने देखते-ही-देखते हाइफेन को उड़ा दिया।

अब उसने अपने घर का रास्ता छोड़कर दूसरी ओर चलना प्रारंभ कर दिया था, जो वसुधा के घर की ओर जाता था। उसने अपने आपको यह सोचकर दिलासा दे ली कि वास्तव में वह किराये का नया मकान ढूंढ़ने निकला था। किसी सज्जन ने उसे यह उपदेश दिया था कि शाम को जिस मकान में बत्ती न जले,

Digitized by srujanika@gmail.com

उस मकान के किराये पर मिलने की संभावना अधिक होती है। यद्यपि इस वक्त समय कोई ज्यादा नहीं था, मगर ठंड का मौसम होने की वजह से अंधेरा जल्दी घिर आया था एवं घरों में बत्तियां जलने लगी थीं। यह रास्ता पद्मधर के लिए अनजान नहीं था, क्योंकि वह किसी-न-किसी बहाने कई बार इस रास्ते से आ-जा चुका था; हालांकि वसुधा के घर जाकर उससे मिलने का साहस वह नहीं जुटा पाया था। किन्तु आज वसुधा के घर में ही अंधेरा था, एवं खाली मकान के साथ किराये के मकान की उपलब्धता का संबंध उसे अतार्किक लगा और उसने उस सज्जन का उपदेश उसी पल त्याग दिया।

बस-स्टैण्ड पर आकर घर के लिए बस पकड़ने से पहले, उसे पत्नी की नींद की दवा की बात याद आई। करीब कोई दवा की दुकान नहीं थी, इसलिए उसने पान की दुकान से सिरदर्द की दवा खरीदी और उसे खोलकर सादे कागज में एक पुड़िया बनाकर जेब में डाल लिया। पद्मधर काफी थक चुका था, एवं इसी के साथ एक दिन और बीत जाने की वजह से आश्वस्त भी हो रहा था। घर पहुंचने में आधा घंटा बाकी था; कल सुबह की क्लास के लिए पन्द्रह घंटा, तीसरी तारीख के लिए सत्ताईस दिन एवं किराये का मकान छोड़ने के लिए कम-से-कम दो साल। दूसरी तरह कहें तो वह वसुधा का घर बस में सात मिनट पीछे छोड़ आया था; सिनेमा का प्रथम शो छोड़ आया था डेढ़ घंटा पीछे, और सिपाही विद्रोह सौ साल पीछे।

बाहर की ठंड से आकर वह अपने किराये के मकान में घुसा। यंत्रचालित-सा खा-पी लेने के बाद उसने बस-स्टैण्ड से खरीदा हुआ अखबार पढ़ा और सोने चला गया। पास ही खाट पर उसकी पत्नी नींद की दवा, वास्तव में जो नींद की दवा नहीं थी, खाकर गहरी नींद में सो चुकी थी। खाट पर पड़े-पड़े पद्मधर बीते हुए

Digitized by srujanika@gmail.com

दिन की बातें सोचने लगा, और सोचते-सोचते वह फिर वही पुराना रास्ता पकड़कर वसुधा के घर के पास जा पहुंचा। इस मर्तबा उस मकान में बत्ती जल रही थी एवं घर पर वसुधा के अलावा और कोई नहीं था। वसुधा उसके करीब आकर बैठी एवं पद्मधर ने आनन्द और तृप्ति से अपनी आंखें मूंद लीं। पर उस समय उसने अपनी पत्नी को ही अपनी बाहों में पाया। उस अनचाही अनुभूति से छुटकारा पाने के लिए उसने अपनी आंखें खोल लीं और रोशनी बुझाकर पास ही बैठी 'वसुधा' को अपने आलिंगन में जकड़ लिया।

पद्मधर ने जब पुनः आंखें खोलीं तो देखा, उसका हाथ गहरी नींद में सोयी अपनी पत्नी पर था। इस बार पद्मधर ने अति सतर्कता के साथ फिर-से आंखें मूंदकर 'वसुधा' की ओर हाथ बढ़ाने की कोशिश की···

Digitized by srujanika@gmail com

संचार

कागज और कलम लेकर चक्रपाणि बैठा ही था कि तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया और चक्रपाणि के सिर में टेलीफोन की घंटी बज उठी। उसने इस घंटी को कुछ देर बजने दिया और शकुंतला को दरवाजा न खोलते देख, खुद दरवाजे पर गया। दरवाजे पर खड़े लड़के ने कुछ न कहते हुए उसके हाथ में एक कागज पकड़ा दिया। चक्रपाणि ने पहली पंक्ति पढ़ी—इस लड़के के जीभ नहीं है। और वह लड़के की ओर देखने लगा। वह लड़का इस प्रतिक्रिया से अभ्यस्त था। उसने अपना मुंह खोलकर दिखला दिया कि उसकी जीभ सचमुच नहीं थी। कागज को और न पढ़ते हुए चक्रपाणि समझ गया कि उसमें लड़के को आर्थिक सहायता देने का निवेदन था। उसने वह कागज उस लड़के को लौटा दिया और जोर से दरवाजा बंद करके चला आया।

इस बार शकुंतला के कानों में दरवाजे की आवाज पड़ी और उसने अन्दर से ही चिल्लाकर पूछा—क्या दीनू लौट आया? चक्रपाणि उसकी आवाज न सुनने का ढोंग करते हुए अपने कागज़ात के पास लौट आया। ये कागज़ात दफ्तर में रखी उसकी व्यक्तिगत फाइल के कुछ अंश थे, जिन्हें चक्रपाणि काफी चतुराई से, विभिन्न समयों पर, विभिन्न उपायों से हस्तगत करके अपने पास रखे हुए था। ये सारे कागज़ात, छः साल पहले उसकी तनख्वाह

Digitized by srujanika@gmail.com

की दर बढ़ाये जाने से उपजे झगड़े से संबंधित थे। उसके हिसाब से पैंतीस दिन की तनख्वाह उसे अधिक दर से मिलनी चाहिए थी; लेकिन दफ्तर के अकाउन्टेंट ने उसे उसका प्राप्य नहीं दिया था। इस बात को उसने अपने विरुद्ध अकाउन्टेंट का षड्यंत्र समझ लिया था, एवं इस अन्याय को सुधारना ही अब उसकी जिंदगी का मकसद बन चुका था।

उसने कागज़ों को उलट-पलटकर फिर एक बार देखा, यद्यपि वे सारे कागज़ात अब तक उसे पूरी तरह कंठस्थ हो चुके थे। सच कहा जाए तो अपने टेलीफोन मरम्मत के काम के बनिस्बत, नौकरी की नियमावली के बारे में अब वह अधिक जानने लगा था। उसकी पैंतीस दिन की अधिक दर से तनख़्वाह वाली बात दफ्तर के सभी लोग जान चुके थे, एवं यहां तक कि नियमावली विभाग के कई कर्मचारी भी तनख़्वाह संबंधी समस्याएं लेकर उस के पास आने लगे थे। हालांकि कइयों को वह उनका हक़ दिलाने में सफल भी हो चुका था, मगर उसकी खुद की फरियाद का अभी तक कोई समाधान नहीं मिल पाया था। इस समय उसकी चिंता का विषय सिर्फ यही था कि दफ्तर में हाल ही में आए नये हाकिम के समक्ष वह किस तरह की दरखास्त लिखकर अपनी मांग प्रस्तुत करे। बारंबार खारिज हुई दरखास्त को किस तरह एक नया रूप देकर पुनर्जीवित किया जा सकता है—इस कला में चक्रपाणि अभ्यस्त था, और इस वक्त वह अपने तर्कों को व्यवस्थित कर रहा था।

दरवाज़ा बंद होने की आवाज वह भूल चुका था, लेकिन शकुंतला नहीं भूली थी। उसने भीतर से ही चिल्लाकर पूछा—“क्या दीनू लौट आया ?” चक्रपाणि के सिर में घंटी बजने लगी और उसने सोचा—रिसीवर न उठाकर ‘नो रिप्लाई’ के लिए छोड़ दें। पर उसे मालूम था कि घंटी फिर बजेगी; इसलिए

Digitized by srujanika@gmail.com

उसने—"नहीं"—कहकर लाइन काट दी और अपनी समस्या पर जुट गया।

पेंतीस दिन की अधिक दर से तनख़्वाह वाली बात, अब उसके लिए सिर्फ कुछ और समयों की बात न होकर न्याय एवं अन्याय तथा अपनी इज्जत का सवाल बन चुका था। इस दौरान तीन हाकिमों का तबादला हो चुका था, पर किसी ने भी उसकी बात नहीं समझी। वे लोग नौकरी की जटिल नियमावली में सिर न खपाकर अकाउन्टेंट की बातों पर सहमत हो जाते थे। नये हाकिम पर चक्रपाणि की आस्था थी, एवं अकाउन्टेंट के चंगुल में फंसने से पहले ही चक्रपाणि उनसे किस तरह मिलकर अपनी दरखास्त दे—यह तरकीब सोचने लगा। क्रमानुसार उसे तीनों हाकिमों की बात याद आने लगी। विभिन्न तरह के लोग होने पर भी वे सब एक विषय पर एकमत थे—उन्हें यह विश्वास नहीं था कि किसी व्यक्तिगत मनमुटाव के कारण चक्रपाणि अपना न्याय पाने से वंचित रह गया है।

चक्रपाणि भी झूठ बोलनेवाला इंसान नहीं था। उस रोज अकाउन्टेंट ने उसकी ओर जिस क्रोध-भरी निगाह से देखा था, उसे कुछ अतिरंजित करते हुए यदि वह कह देता कि अकाउन्टेंट ने उसे गाली दी है, तो व्यक्तिगत विद्वेष प्रमाणित हो सकता था। लेकिन उसे इस बात पर पूरा विश्वास था कि अंततः न्याय की ही विजय होगी, और वह इसी दृढ़ विश्वास के सहारे जी रहा था। उसे दुःख सिर्फ इसी बात का था कि शकुंतला उसके इस जीवन-मरण की समस्या से कोई सरोकार नहीं रखती थी, एवं उसकी अथक कोशिश के बावजूद अब तक नौकरी-नियमावली की पहली धारा तक नहीं समझ पाई थी। तथापि चक्रपाणि ने यह उम्मीद लगा रखी थी कि कभी-न-कभी वह शकुंतला को इस विषय का ज्ञान कराने में समर्थ जरूर होगा।

Digitized by srujanika@gmail.com

उसकी खुशनसीबी थी कि शकुंतला उसके करीब आयी। चक्रपाणि ने अति आग्रहपूर्वक अपनी पहली दरखास्त निकाली। उसके कुछ कहने से पहले ही शकुन्तला ने उससे कहा—"तुम टेलीफोन मरम्मत करने वाले, यह हर वक्त कागजों के बीच क्या उलझे रहते हो? उधर लोग अखबारों में लिखते हैं कि सारे टेलीफोन विगड़े हुए हैं।" इस बात की जड़ पकड़ते हुए चक्रपाणि ने कहा—"हां, टेलीफोन की मरम्मत तो हो जाएगी, लेकिन क्या टेलीफोन मरम्मत करनेवालों का दुःख कोई सुनता है? देखो, छः साल हो गये···" इस बार कागज से मुंह उठाकर चक्रपाणि ने शकुंतला की ओर देखा। हालांकि शकुंतला की आंखें टेबुल पर टिकी हुई थीं, किंतु उसके कान रसोई-घर में लगे थे। चक्रपाणि को कुछ और कहने का अवसर न देते हुए शकुंतला ने चिल्लाकर कहा—"क्या तोड़ डाला?" और वहां से चली गयी।

···नहीं, अब वह शकुंतला को नहीं समझा पाएगा। नौकरी की नियमावली की बात तो दरकिनार, अति साधारण बातों के लिए भी शकुंतला में किसी प्रकार का कोई आग्रह नहीं था। जिस दिन उसने टेलीफोल पर दो शीर्षस्थ नेताओं की गोपनीय बात-चीत से मंत्रिमंडल के पतन की बात सुनी, वह खूब उत्तेजित हो उठा था। उसके मन में पहली प्रतिक्रिया यही हुई थी कि नये मंत्रिमंडल का गठन होने पर बहुत-से हेर-फेर होंगे, और नसीब में होगा तो अकाउन्टेंट की मुट्ठी में बंद हाकिम की बदली भी हो जाएगी और उनकी जगह कोई दूसरे हाकिम आएंगे। शकुंतला हर रोज अखबार पढ़ती थी, और चक्रपाणि ने सोचा था कि परसों सुबह अखबार आने से पहले ही वह शकुंतला को यह जरूरी समाचार सुनाकर चकित कर देगा। लेकिन उस रोज शकुंतला का मन ठीक नहीं दिख रहा था। जब उसने शकुंतला से मंत्रिमंडल भंग होने की बात कही, शकुंतला ने नाराज होते हुए कहा—"तुम्हें

Digitized by srujanika@gmail.com

मंत्रिमंडल भंग होने की चिंता है; इधर नौकर लड़के ने दो गिलास फोड़ डाले हैं, उसके बारे में भी ज़रा सोचो ! अब तो इस छोकरे के साथ मेरा गुजारा नहीं हो सकता…"

शकुंतला की समस्या थी घर में काम करनेवाला छोकरा। पिछले बीस वर्षों में उसके यहां काम करनेवाले कम-से-कम तीस छोकरों में शकुंतला को कोई भी पसंद नहीं था। नया छोकरा आते ही, उसे एक 'आदर्श नौकर' बनाने का संकल्प लेकर शकुन्तला उसके पीछे अपना सारा समय लगाती रही; लेकिन अपने महत् प्रयास में वह अब तक सफल नहीं हो सकी थी। शकुन्तला के दुर्भाग्य से, ये सभी छोकरे भी मानो उसके सारे कांच के गिलास फोड़ डालने का संकल्प लेकर ही आते थे। इस बारे में शकुन्तला खूब सजग थी एवं बरतन-मंजाई के त्योहार को वह खूब सतर्कतापूर्वक संचालित करती थी। फिर भी बीच-बीच में, मौका पाते ही वे छोकरे गिलास फोड़ डालते थे। इसीलिए रसोईघर में न रहने पर भी शकुन्तला का ध्यान हर वक्त वहीं लगा रहता था, एवं बीच-बीच में—'क्या फूटा'—कहते हुए वह अंदर चली जाती थी।

शकुन्तला की एक और समस्या थी, काम करनेवाले छोकरे का समय-असमय बाहर खिसक जाना। इसमें मुख्य दुश्मन घर का पिछला दरवाजा था। यदि उसे घर का नक्शा बनाने दिया गया होता, तो शकुंतला उस पिछले दरवाजे को निकाल देती और एकमात्र सामने के दरवाज़े पर बैठकर नौकर छोकरे का बाहर आना-जाना नियंत्रित कर सकती थी। लेकिन इस समय तो थोड़ा-सा मौका मिलते ही वह छोकरा पिछले दरवाज़े से चला जाता था। इस बात पर भी शकुंतला कड़ी नज़र रखती थी, एवं गिलास फूटने के प्रश्न के साथ 'बाहर कौन गया'—प्रश्न की पुनरावृत्ति भी करती रहती थी।

Digitized by srujanika@gmail.com

जिस तरह शकुंतला नौकरी-नियमावली से पूर्णतः अनभिज्ञ थी, उसी तरह चक्रपाणि गिलास फूटने अथवा छोकरे के दो-चार मिनट के लिए बाहर चले जाने की घटना को अति साधारण समझता था। धुले हुए बरतनों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म दाग निकालना या टेबुल पर थोड़ी-सी धूल होने की बात प्रमाणित करना, चक्रपाणि को अनावश्यक-अतिरंजित बहस करना, लगता था। किंतु शकुंतला का कहना था कि यदि शुरू से ध्यान न दिया गया, तो आगे चलकर गंदे बरतनों में खाना पड़ेगा और धूलभरे घर में रहना होगा। चक्रपाणि इन अतिशयोक्तियों को भुला सकता था, लेकिन उसके घर में कोई भी नौकर छः-सात महीने से ज्यादा नहीं टिकता था, एवं नया नौकर लाने की जिम्मेदारी उसी की होती थी, जब कभी बीच-बीच में कुछ दिनों के लिए नौकर नहीं होता था, तब भी हालांकि घर का काम अच्छे ढंग से चलता था, मगर शकुंतला को चैन नहीं पड़ता था।

नौकर ने कुछ नहीं फोड़ा—इस बात से संतुष्ट हो जाने के बाद शकुंतला चक्रपाणि के पास पुनः लौट आयी। एक अन्य दिशा से समस्या पर आक्रमण करते हुए, शकुंतला को अपने पक्ष में लाने की कोशिश करते हुए चक्रपाणि ने कहा—"सुनती हो, हमारे दफ्तर में नये हाकिम आ रहे हैं"—शकुंतला पर इस बात की एक अलग प्रतिक्रिया हुई। उसने कहा—"नये हाकिम मिलते हैं; लेकिन घर के काम के लिए एक नया छोकरा खोजने पर नाक में दम हो जाता है। आज दीनू ने खाना बनाने में देर कर दी। पप्पू और मिनी आधा पेट खाकर चले गये···" चक्रपाणि ने देखा कि मामला उसके नियंत्रण से बाहर हो रहा है। उसने सिर के अंदर टेलीफोन के सभी तारों को काटकर उसे डेड् करके, फिर से अपने काम में जुटने का निश्चय किया। लेकिन शकुंतला ने अभी तक रिसीवर को जोर से पकड़ रखा था। उसने चक्रपाणि से पूछा,

Digitized by srujanika@gmail.com

"दीनू तुम्हें चाय दे गया या नहीं ?"···

शकुन्तला ने चिघाड़ते हुए दीनू को बुलाया किंतु उस छोकरे ने कोई जवाब नहीं दिया, क्योंकि उसका नाम दीनू नहीं था। जिस नौकर का नाम दीनू था, वह दो साल पहले ही भाग गया था। शकुन्तला स्वयं रसोई में गयी, और चक्रपाणि ने अपने सिर के अंदर का रिसीवर फौरन रख दिया। लेकिन यह बात क्षणिक थी, कुछ ही मिनटों में हाथ में कप पकड़े नौकर को मार्च कराते हुए शकुन्तला फिर उस कमरे में आ पहुंची। नौकर ने टेबुल पर जिस जगह कप रखा, वह जगह शकुन्तला को नहीं भायी। अतएव उसने नौकर को क्रोध-भरी निगाह से देखा और कप को एक इंच खिसकाकर 'दूसरी जगह' रख दिया। चक्रपाणि के कुछ कहने से पहले ही शकुन्तला ने कहा—"इस आदिवासी छोकरे से अब मैं सिर नहीं खपा सकती ! न मैं इसकी बात समझ सकती हूं और न यह मेरी। अब तुम कोई एक नया नौकर ढूंढ़ो···"

बातें सुनकर अनसुनी करने की कला से चक्रपाणि अपरिचित था, यद्यपि टेलीफोन पर दूसरों की बातचीत सुनते समय इस कला के अनेक उदाहरण उसके कान में पड़े थे। उदाहरण के लिए, उस रोज एक मंत्री द्वारा दूर-दराज के किसी जिले के पुलिस-ऑफिसर को फोन करते समय, बातचीत सुनाई न पड़ने की शिकायत उसके पास आई थी। जांच-पड़ताल करने पर उसने देखा कि टेलीफोन तो ठीक था, लेकिन मंत्री महोदय के विरोधी पार्टी के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने का अवैध मौखिक आदेश सुनने को पुलिस-ऑफिसर तैयार नहीं था। टेलीफोन ऑपरेटर की बात पुलिस-ऑफिसर को ठीक से सुनाई पड़ रही थी, किंतु मंत्री महोदय के लाइन पर आते ही पुलिस-ऑफिसर की श्रवणशक्ति यकायक कमज़ोर पड़ जाती थी। लेकिन शकुन्तला के आगे अपनी श्रवणशक्ति को इच्छानुसार नियंत्रित करने का सामर्थ्य

Digitized by srujanika@gmail.com

चक्रपाणि में नहीं था। इसलिए उसने शकुन्तला को आश्वासन दिया कि नया नौकर खोजने में वह अपनी पूरी शक्ति लगा देगा।

रिसीवर रखकर उसने फिर से कागज़ातों को देखना प्रारंभ किया ही था कि तभी किसी ने दरवाज़ा खटखटाया, और चक्रपाणि के सिर में टेलीफोन की घंटी फिर बज उठी। चक्रपाणि ने दरवाज़ा खोलकर देखा तो बाहर अब वह लड़का नहीं था, जिसकी उसे आशंका थी; मिनी ही घर लौटी थी। अंदर के—"क्या दीनू लौटा?" प्रश्न के साथ ही उसने दरवाजा बंद कर दिया। मिनी बातूनी थी और हर रोज कॉलेज से लौटते ही उस रोज कॉलेज में जो कुछ भी हुआ—उसका सारा विवरण विस्तार से सुनाना चाहती। अन्यमनस्क अध्यापक के कुर्सी से गिर पड़ने की घटना, जो की मिनी ने बहुत दिनों पहले बतलायी थी, चक्रपाणि को काफी रोचक लगी थी; लेकिन ऐसी घटना हर रोज न घटने के कारण चक्रपाणि मिनी की धारावाहिक रिपोर्टिंग में कोई रुचि नहीं रखता था। अंत में लाचार होकर मिनी अपने कॉलेज की बातें घर के नौकर से कहा करती थी। नौकर की समझ में कुछ न आने पर भी, मिनी को इससे कुछ संतोष हो जाता था। लेकिन यह बात शकुन्तला के क्षोभ का कारण होती थी।

इस बारे में पप्पू मिनी के बिल्कुल विपरीत था। बाहर सड़क पर अपने सहपाठियों के साथ घंटों बातचीत करने वाला पप्पू घर में घुसते ही गूंगा बन जाता था। जितनी देर भी घर में रहता था। अपना सारा समय पढ़ाई में लगाता था एवं किसी के साथ कोई बातचीत नहीं करता था। बल्कि, यदि मिनी उससे अपने कॉलेज की बात कहती तो वह नाराज हो जाता था। पप्पू अपनी इच्छा-नुसार घर लौटता था। लेकिन पढ़ाई में तेज होने की वजह से

Digitized by srujanika@gmail.com

चक्रपाणि उसे डांटने का मौका नहीं पाता था।

मिनी को देखकर शकुंतला को, सुबह नौकर के ठीक समय पर खाना न देने वाली बात याद आयी और उसने नौकर को बुलाकर सबके सामने फिर डांट पिलायी। मिनी ने यद्यपि कहा कि सुबह उसने भर पेट खाना खाया था; किंतु शकुंतला ने कहा कि ऐसा कहकर सारे लोग नौकर को सिर पर बिठा रहे हैं। मिनी ने ठीक से भले ही खाया हो, लेकिन पप्पू ने ठीक से नहीं खाया था, इस बात में शकुंतला को कोई संदेह नहीं था। नौकर को फिर एक बार फटकारने के इरादे से उसने पूछा, "पप्पू अभी तक कहां है ?" मिनी, जिसने कि उस दिन कॉलेज में खा लिया था, एवं उस रोज कॉलेज में घटी मज़ेदार घटनाएं किसी को न सुना पाने के कारण अप्रसन्न थी, नाराज़ होते हुए बोली, "उसके बारे में कोई क्या जाने ? वह क्या किसी को कहकर जाता है ? वह चाइनीज व जापानी भाषा सीख रहा है—ऐसा ही कुछ कह रहा था। शाम की क्लास में गया होगा। हमारे अंग्रेजी के प्रोफेसर…"

मगर इतना कहते ही मिनी अपनी गलती समझ गई। उसके अंग्रेजी के प्रोफेसर उस रोज अपने सामने के दो दांत उखड़वाकर खूब हास्यास्पद दिख रहे थे; लेकिन मिनी जानती थी कि आज यह बात सुनने के लिए कोई तैयार नहीं है। वह अपनी बात आधे में ही बंद करते हुए अपने टेबुल पर चली गई। मिनी के प्रोफेसर के बारे में सुनने से मुक्ति पाकर चक्रपाणि ने चैन की सांस ली। नौकर के गिलास फोड़ने की योजना को नाकाम करने के लिए तब तक शकुंतला रसोई में जा चुकी थी। चक्रपाणि ने अपने सिर के सभी टेलीफोन के तारों को काटकर अपने कागज़ात पर ध्यान केन्द्रित किया।

नये हाकिम को फोन करने के लिए उसे एक ऐसी लाइन की

Digitized by srujanika@gmail.com

आवश्यकता थी, जिसका अकाउन्टेंट के टेलीफोन में क्रॉस-कनेक्सन न हो। ऐसा संप्रेषण स्थापित करने के लिए क्या करना चाहिए, इस समय यही बात चक्रपाणि की चिंता का मुख्य विषय था। उसने पुराने कागजों को फिर से इधर-उधर उलटा—नहीं, इस बार दरखास्त ऐसी सरल भाषा में लिखनी होगी कि अकाउन्टेंट के बिना किसी टीका-टिप्पणी के हाकिम की समझ में आ जाए। दरखास्त किस तरह लिखी जाएगी, यह भी चक्रपाणि ने मन-ही-मन सोच लिया था। अब उसे पूरा विश्वास हो चुका था कि इस बार अपने हाकिम की बाधारहित सीधी हॉटलाइन मिल गयी है।

इस विश्वास को वह कागज पर एक शक्ल देने जा ही रहा था कि फिर दरवाजे पर दस्तक हुई। चक्रपाणि के सिर के अंदर का टेलीफोन कुछ सजीव हो उठा, लेकिन उसने जबर्दस्ती टेलीफोन की घंटी एक 'एंगेज्ड' स्वर में बदल दी। उस ओर के व्यक्ति ने फिर एक बार दरवाज़ा खटखटाकर उसका नंबर मिलाया। प्रतिरक्षास्वरूप इस बार चक्रपाणि ने 'नो रिप्लाई' का सहारा लिया। किंतु तीसरी बार टेलीफोन की घंटी की उपेक्षा न कर पाते हुए दरवाजे के पास गया; और उसने निश्चय किया कि बाहर खड़े व्यक्ति की जीभ काटकर उसे पूरी तरह गूंगा बना देगा।

जब वह दरवाजा खोलने पहुंचा, मिनी भी दरवाजा खोलने के लिए वहां पहुंच चुकी थी। गिलास फोड़ना छोड़कर कहीं दीनू खुले दरवाजे से होकर बाहर न चला जाए—इस डर से शकुंतला भी वहां पहुंच चुकी थी। दरवाजे के उस ओर जो लड़का खड़ा था, वह गूंगा नहीं था; क्योंकि उसने चक्रपाणि की ओर एक कागज बढ़ाते हुए—"पप्पू"—कहा, एवं किसी के कुछ कहने से पहले ही वहां से गायब हो गया। कागज पप्पू ने भेजा है या पप्पू

Digitized by srujanika@gmail.com

के लिए है—इस बारे में चक्रपाणि यकायक कुछ तय नहीं कर पाया। शकुंतला ने पूछा—"किसका है, यह इतना सुंदर नौकर? तुमने उससे पूछा क्यों नहीं?" इसी बात से, नौकर की लापरवाही के कारण सुबह पप्पू के ठीक से न खाये होने की बात उसे फिर याद आ गयी और उसने पूछा—"क्या लिखा है पप्पू ने?…"

कागज खोलते ही चक्रपाणि यकायक निर्वाक् हो गया। न मालूम चिट्ठी चीनी भाषा में थी या जापानी में, उसके सारे अक्षर चक्रपाणि की समझ से बाहर थे। चक्रपाणि शकुंतला की बात का जवाब देने जा रहा था, मगर न जाने क्या सोचकर चुप रह गया। हाकिम के साथ उसकी हॉट-लाइन का तार तब तक टूट चुका था। उसने सिर के भीतर टेलीफोन की घंटी बजने दी। अचानक एक साथ कई टेलीफोन बज उठे, और 'एंगेज्ड' एवं 'नो रिप्लाई' के स्वरों के साथ कई तार उलझकर एक ही समय में बहुत सारी बातचीत उस तक पहुंचाने लगे। चक्रपाणि निर्विकार-सा उन सारे शब्दों और स्वरों को सुनने लगा, जिनमें दरवाजे की खटखटाहट, मिनी की हंसी, पप्पू की चुप्पी, चीनी और जापानी वाक्य, गिलास फूटना एवं 'दीनू कहां गया' इत्यादि शामिल थे।

Digitized by srujanika@gmail com

दुःस्वप्न

जब तक उसे रातवाला सपना याद नहीं आया था, उस दिन की सुबह भी अविनाश के लिए हर रोज की तरह एक साधारण सुबह थी। लेकिन बिस्तर से उठकर मुंह धोते समय सहसा उसे वह सपना याद आ गया। सपने में भगवान ने लंबी-काली पोशाक पहन रखी थी। उनकी ऊंचाई लगभग १० फुट थी एवं उनका चेहरा अस्पष्ट था। भगवान उसके सम्मुख पलभर खड़े हुए और बोले—"तुम्हारा वक्त आ गया है; अब मेरे पास चले आओ।"

उसके बाद सपने ने अपना रुख बदल दिया था, और फिर क्या सब हुआ—अविनाश को कुछ भी याद नहीं। लेकिन भगवान के साथ उसका संक्षिप्त साक्षात्कार अभी भी अविनाश को ताजा लग रहा था। सपने की बात याद आते ही अविनाश का सारा शरीर और हाथ पसीने से भीग गया। अनजाने ही उसे वह मंत्र स्मरण हो आया, जो किसी गुरु ने कई वर्ष पहले उसे सिखाया था, लेकिन कुछ दिनों तक जाप करने के बाद उसने छोड़ दिया था। इस वक्त वह मन-ही-मन खूब तेजी से उसी मंत्र को दुहरा गया।

सपना अविनाश की कल्पना के बाहर था। मृत्यु को लेकर किसी ठोस स्थिति की बात सोचने पर अविनाश काले भैंसे पर सवार, हाथ में फंदा लिये, भयानक सूरतवाले यमराज को ही

Digitized by srujanika@gmail.com

देखता। मृत्यु के बारे में उसकी कल्पना सत्यवान और नचिकेता तक ही सीमित थी, एवं कई बार उसने अपने आपको नचिकेता की भूमिका में रखकर अपने प्रश्नों से यमराज को उलझन में डालने की कल्पना भी की थी। किंतु उसके सपने में उसकी मृत्यु की खबर लेकर भगवान खुद आए थे। यदि सपने पर उसका कोई वश चलता तो अविनाश भगवान को काले की जगह सफेद पोशाक पहनाता और उनकी एक मनमोहक सूरत बनाता, जिसका चेहरा कृष्ण की भूमिका में बारंबार आने वाले फिल्म स्टार-सा होता। उनकी भाषा भी यथासंभव गंभीर बनाते हुए संस्कृत के अनेक तत्सम और तद्भव शब्दों से समृद्ध कर देता।

अब ये सारी चिंताएं निरर्थक थीं, और इस तरह की बातें सोचना अविनाश को कुछ पाप मिश्रित-सा लग रहा था। सच कहा जाए तो अविनाश डर रहा था और वह ऐसा कुछ नहीं करना चाहता था, जिससे कि भगवान क्रुद्ध होकर उसे और भी जल्दी अपने पास बुला लें। उसी वक्त अविनाश को याद आया कि रविवार के अखबार में, सपने की सार्थकता के बारे में एक लेख निकला था। वह तेजी से गया और अखबार से लेख ढूंढ़ निकाला। वह जो अंश ढूंढ़ रहा था, इस तरह था—सपने के लिए पूरी रात चार भागों में बंटी है। रात्रि के प्रथम प्रहर में जो सपना दिखता है, उसका फल एक साल के अंदर मिलता है; दूसरे प्रहर का फल आधे वर्ष के अंदर; तीसरे प्रहर का तीन महीने के अन्दर और शेष अथवा भोर के सपने का फल एक महीने के अन्दर ही मिल जाता है।…

अविनाश को घबराहट होने लगी। उसे याद नहीं आ रहा था कि सपना उसने किस समय देखा था। सपना देखने के तुरत बाद नींद से जाकर घड़ी न देखने के कारण वह स्वयं पर ख़फा हो रहा था। सपना रात के प्रथम पहर का नहीं था, यह बात तो निस्सन्देह

Digitized by srujanika@gmail.com

थी—क्योंकि रात को अविनाश काफी देर में सोने गया था। सपना भोर के समय का होना भी कोई असंभव बात नहीं थी, क्योंकि सपने की बातें अविनाश को स्पष्ट याद थीं। इसके मायने, केवल एक महीने की मोहलत! अविनाश ने इस बात का कुछ और वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया—यदि उसने सपना भोर के बिल्कुल आखिरी भाग में देखा होगा, तो संभव है, उसका फल मात्र कुछ ही दिनों के अंदर मिल जाए···कुछ भी हो, साल भर, महीना भर या केवल कुछ ही दिन क्यों न हो, समय अब काफी करीब आ चुका था।

पत्नी से अपने सपने की बात कहे या न कहे, सोचने के बाद अविनाश ने तय किया कि यह बात उसे न बतलाना ही अच्छा है। बहुत दिन पहले अविनाश ने पत्नी को अपने सपने में स्वयं के मुकुट पहने, सिंहासन पर बैठनेवाली बात बतलायी थी, और पूरे विश्वास के साथ कहा था कि इस बार सिर्फ इंक्रिमेंट ही नहीं, उसका प्रोमोशन भी कोई नहीं रोक सकता। किंतु अन्ततः उसका प्रोमोशन नहीं हुआ; और मौका मिलते ही, समय-समय पर उसकी पत्नी उसी राजकीय सपने की बात याद दिलाकर उसका मज़ाक उड़ाया करती थी। हालांकि यह सपना अति दुखद था। मगर अविनाश को मालूम था कि उसकी पत्नी—'भले ही विधवा हो जाऊं, किंतु पति की मूर्खता को माफ नहीं करूंगी'—इस भावना से परे नहीं थी। इसलिए उसने तय किया कि केवल पत्नी ही नहीं, दफ्तर में उसकी कुर्सी के करीब बैठकर काम करने वाले अरविंद बाबू जो अपने पारिवारिक जीवन की अनेक गोपनीय बातें उसे बताया करते थे, को भी यह बात नहीं बतलाएगा।

इस तरह का सपना देखने के बाद दफ्तर जाने का सवाल ही नहीं उठता था। लेकिन दफ्तर न जाने पर उसे अस्वस्थता के बहाने छुट्टी लेनी पड़ेगी, और उस झूठी योजना में पत्नी को भी शरीक

Digitized by srujanika@gmail.com

करना होगा, इससे अविनाश कुछ उदास हुआ। अतः वह वाकई तबीयत खराब होने का बहाना करते हुए इस तरह की आवाजें निकालने लगा, जैसे कि उसे खूब कष्ट हो रहा है। लेकिन तब तक उसकी पत्नी रसोई में जा चुकी थी, इसलिए उसके सभी नाटकीय परिश्रम व्यर्थ साबित हुए।

अविनाश को अखबार में छपे राशिफल की बात याद आयी, और उसने जानना चाहा कि उसमें प्रकाशित भविष्यवाणी से उसके सपने का कोई तालमेल है या नहीं। उसने अखबार में राशिफल वाला स्तंभ ढूंढ़ निकाला। लेकिन उसे पढ़ते समय उसके सामने एक और नयी समस्या आ खड़ी हुई। पहले कभी उसने यह स्तंभ नहीं देखा था और इसी वजह से, उसका भाग्य किस राशि के अन्तर्गत होगा, इसे लेकर उसके मन में द्वन्द्व उपजा। यद्यपि वह अपने को 'मिथुन' समझता था, मगर राशियों के पास दी गई जन्म तिथियों से जान पड़ता था कि वह 'वृष' है। भविष्यवाणी के मुताबिक मिथुन के लिए पदोन्नति एवं वृष के लिए सामाजिक और आर्थिक उन्नति का योग न होने पर भी, स्त्री का सहयोग और रोमांच आदि अनेक सुखकर संभावनाएं थीं। हालांकि किसी और समय में ये सारी बातें अविनाश को खुश करने में सहायक होतीं, मगर इस समय की मानसिक स्थिति में ये सारी भविष्यवाणियां उसे मुंह चिढ़ाती-सी लगीं। उसने नाराज़ होते हुए अखबार ले जाकर पुराने अखबरों के ढेर में रख दिया।

अपनी अवश्यम्भावी मृत्यु के बारे में अविनाश की धारणा उत्तरोत्तर बलवती होने लगी। उसने मन-ही-मन हिसाब लगाकर देखा कि उसकी उम्र मात्र उनतालीस साल की है। साल भर पहले रिटायर हुए एक सज्जन की बात उसे याद आयी, जो पैंसठ साल की उम्र में भी खूब कर्मठ और तत्पर थे। अपना गलत सर्टि-फिकेट दिखलाकर उन्होंने न केवल अपने दफ्तर को, बल्कि स्वयं

Digitized by srujanika@gmail.com

भगवान को भी ठगा था। वे अब भी बीच-बीच में दफ्तर आते थे, और अपनी मनोरंजक अश्लील बातों से ऑफिस के युवकों के प्रिय पात्र बन बैठे थे। उनके जीवित रहते हुए, भगवान का उसे नोटिस देना, अविनाश को सरासर अन्याय लग रहा था। इस अन्याय के विरुद्ध पुनर्विचार का आवेदन करने की धारणा से उसने अपने आपको अलग कर लिया था, क्योंकि वह भगवान को असंतुष्ट नहीं करना चाहता था।

आसन्न मृत्यु का सामना करने को तैयार होने के लिए, अविनाश हिसाब के लिए कागज और कलम ढूंढ़ने लगा। घर पर कभी कागज-कलम की आवश्यकता न पड़ने के कारण वह बच्चों की आलमारी खोलकर इधर-उधर ढूंढ़ा-ढांढ़ी करने लगा। वहां भी कोई लेखन-सामग्री न पाकर खूब ऊंची आवाज में कागज और कलम के बारे में अपनी पत्नी से पूछा, किंतु उसकी पत्नी का कोई जवाब मिलने से पहले ही उसे कलम मिल गयी, और वह 'हां··· मिल गया'—कहकर टेबुल पर आ बैठा। कागज पर उसने पहले अपनी जन्म-तारीख एवं उस दिन की तारीख लिखकर अपनी ठीक-ठीक उम्र उनतालीस साल तीन माह और सात दिन निर्धारित की। उसके नीचे उसने अपने दोनों बेटों का नाम और उनकी उम्र लिखी, एवं उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने के लिए और कितना खर्च लगेगा—इसका मानसिक हिसाब करने लगा। इस विषय में उसे कोई खास सफलता नहीं मिली, कारण उसका बड़ा लड़का जो कॉलेज में पढ़ता था, पढ़ने में ठीक नहीं था। तथापि, उसने हिसाब करके दोनों के लिए दो संख्याएं लिखीं एवं बड़े लड़के के खर्च में पचास प्रतिशत और जोड़ दिया।

यदि उसकी पत्नी आकर उससे पूछती कि वह क्या कर रहा है, तो हो सकता है, अविनाश उसे अपने सपने के बारे में न बतलाकर, बच्चों के भविष्य के लिए बनाई जा रही योजना के बारे में

Digitized by srujanika@gmail.com

बतलाता। लेकिन उसकी पत्नी ने उसके लिए लाया हुआ नाश्ता सामने रख दिया; और जब अविनाश ने कहा कि उसे भूख नहीं है, तो बिना कोई वाक्य खर्च किए उसकी पत्नी ने तश्तरी उसके सामने से उठा ली, और उसी के सामने खड़ी होकर गपागप खाने लगी। यह देखकर हठात् अविनाश को भूख लग आयी, लेकिन 'अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत··· ?' 'का तब कांता' इत्यादि बातें याद करके उसने अपने मन को सांत्वना दी कि वाकई यह संसार अति विचित्र है।

हिसाब के कागज पर नजर डालते ही उसे अपनी इंश्योरेंस-पॉलिसी का ध्यान आया। करीब साल भर से उसने पैसा जमा नहीं किया था। उसने आज ही पैसा भरने का निश्चय किया। यदि कुछ साल पहले ही भगवान सपने में दिख जाते तो वह अधिक राशि का बीमा करवाता। किंतु अधिक प्रीमियम वह दे नहीं पाता, और उसकी पॉलिसी कई वर्षों से बेकार होकर पड़ी रहती, इस बारे में भी अविनाश को कोई संदेह नहीं था। कुछ भी हो इस समय वह बीमा के कागज ढूंढ़ने लगा। पुराने प्रेसक्रिप्सन, राशन-दुकान के कैशमेमो, प्रोमोशन-दरख़ास्त की कार्बन-कॉपी इत्यादि के बीच वह कागज कहीं नहीं था। उसने ऊंची आवाज में —"मेरे इंश्योरेंस का कागज कहां है ?"—पूछा। उसकी पत्नी रसोई में सब्जी काट रही थी। हाथ में कद्दू का एक बड़ा-सा टुकड़ा लिये हुए वह दनदनाती हुई आयी और बोली—"मुझे क्या मालूम ? मैं क्या तुम्हारे कागजों के पीछे-पीछे घूमती हूं ?"

अविनाश को बहुत दुख हुआ और उसने मन-ही-मन कहा—जाओ, मरो ! एवं निश्चय किया कि अब वह इंश्योरेंस का बाकी पैसा जमा नहीं करवायेगा। उसने हिसाब किये हुए कागज को फाड़कर फेंक दिया और कुछ देर तक गुमसुम बैठा रहा—नहीं, अब वह अपने बारे में कुछ सोचेगा। कॉलेज के दिनों में वह अच्छा

Digitized by srujanika@gmail.com

विद्यार्थी था एवं साहित्य में रुचि रखता था—यहां तक कि कविताएं भी लिखता था। कॉलेज के दिनों में लिखी तैंतालीस कविताएं बहुत दिनों तक उसके पास रखी रहीं। उसकी इच्छा थी कि वह सात कविताएं और लिखेगा, किंतु यह फिर संभव नहीं हो पाया। अन्त में उसने वे कविताएं अपने हाकिम को दे दी थी, उसके चरित्र-प्रमाण-पत्र पर उसके उच्चपदस्थ कर्मचारी द्वारा लिखी गई—'रचना-भंगिमा अति साधारण है' टिप्पणी की असारता साबित करने के लिए। हालांकि वह इस कोशिश में सफल नहीं हो पाया था और उसे प्रोमोशन नहीं मिला था, मगर हाकिम के पास जाकर उनसे अपनी तैंतालीस कविताएं मांग लाने की हिम्मत उसमें नहीं थी। संभव है हाकिम ने उन कविताओं को कहीं खो दिया हो।

कॉलेज में पढ़ते समय उसने और एक महत् योजना अपने हाथ में ले ली थी। उसने अपने जीवन-काल के दौरान आत्मकथा-परक पांच अस्तित्ववादी उपन्यास लिखना निश्चित किया था। यद्यपि उस समय वह युवक था, फिर भी अपना भविष्य उसे किस तरह बनाना है, इसका मोटे तौर पर एक खाका उसने बना लिया था, एवं इन पांचों उपन्यासों का नाम भी तय कर चुका था—अपूर्व, आनन्द, अद्भुत, अमृत और अनंत। लाल जिल्द बंधी एक कॉपी में उसने इन पांचों उपन्यासों का सारांश भी लिख रखा था। इस समय अविनाश की इच्छा हुई कि मरने से पहले वह इन पांचों उपन्यासों को लिख डाले। अविनाश उस लाल कॉपी को ढूंढ़ने लगा। मगर आलमारी की सभी चीजें उलट-पलट डालने के बाद भी उसे वह नहीं मिली। उसने—"मेरी वह लाल कॉपी कहां है"—कहकर आवाज लगायी, एवं एकाएक अपनी गलती समझते हुए झूठमूठ [ही—"मिल गया" कहने के पहले ही पत्नी रसोईघर से आकर उसके सामने खड़ी हो गई। इस बार

Digitized by srujanika@gmail.com

उसके एक हाथ में आधा बैंगन और दूसरे हाथ में पहंसुल था।

जल्दी से नहानघर में घुसकर अंदर से दरवाजा बंद करते हुए अविनाश ने लाल कॉपी की बात याद की। अपनी साहित्यिक उच्चाभिलाषा के बारे में भी अविनाश ने कुछ दिन पहले, किसी कमज़ोर घड़ी में अपनी पत्नी को बतलाया था। एक दिन दफ्तर से लौटने के बाद जब उसने अपनी पत्नी से खाना परोसने को कहा, उसकी पत्नी ने कहा—"आज खाना बनाने में देर है—अभी घंटा-भर और लगेगा। तुम कह जो रहे थे, पांच कहानियां ना, क्या लिखना है, जाओ, रसोई बनने तक बैठकर लिखो !" इस बात को, अस्तित्ववाद के बारे में पत्नी की अज्ञानता समझकर, अविनाश हंसी में टाल सकता था, लेकिन उस भूख की हालत में यह बात उसे खल गयी, और उसने उस लाल कॉपी में लिखे हुए कुछ पृष्ठों को फाड़ डाला और वह कॉपी अपने छोटे लड़के को दे दी। खाते में बहुत दिनों पहले बनाई गई उपन्यासों की उस रूप-रेखा के बिना, उपन्यास लिखना शुरू करने को लेकर उसे शंका होने लगी। यहां तक कि पांचों उपन्यासों के नाम के क्रम में भी उसे संदेह हुआ, और आखिर में उसने तय किया कि अंतिम उपन्यास का नाम अमृत था, अनंत नहीं।

नहानघर में उसने अपने शरीर को देखा—नहीं, अब यह शरीर अधिक दिनों तक नहीं चलेगा। वह खूब मोटा और गंजा हो चुका था, एवं उसके छह दांत नकली थे। यहां तक कि कुछ दिनों पहले, उसकी युवावस्था की एक फोटो देखकर उसके छोटे बेटे ने इस बात पर गहरा संदेह प्रकट किया था कि वह फोटो अविनाश का हो सकता है। स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट शरीर के रहते हुए भी अविनाश हर वक्त कमजोरी अनुभव करता था। वह सोच रहा था—शायद इस बीच उसे रक्तचाप और अलसर आदि बीमारियां भी हुई थीं, लेकिन डर के मारे वह डॉक्टर के पास

Digitized by srujanika@gmail.com

नहीं गया था।

शारीरिक कमजोरी के साथ ही उसे मानसिक कमजोरी भी खूब थी। दफ्तर में वह सबसे अधिक डरपोक कर्मचारी के रूप में जाना जाता था। हाकिम द्वारा बुलवाये जाने पर उसके शरीर से पसीना छूटने लगता था, और उनके सामने खड़े होकर बात करते वक्त हकलाने लगता था। बाजार में खरीददारी करते वक्त वह मोल-तोल नहीं कर पाता था, और कहीं भीड़ देखते ही दूर से ही भाग आता था। ऑफिस में बिला वजह उच्च कर्मचारियों की गालियां भी वह खामोशी से सुन लेता था। इस समय नहानघर में इन सारी बातों को याद करके, अपने जिंदा रहने के अधिकार पर उसे खूब संदेह हुआ।

दफ्तर न जाने पर भी इस समय वह घर में रहना नहीं चाहता था। इसलिए नहा-धोकर घर से निकल पड़ा। उसकी पत्नी विचित्र स्वभाव की थी। सुबह से भूखे अविनाश को उसने कुछ खाने तक को नहीं पूछा। सड़क पर पहुंचते ही वह छुट्टी के लिए दफ्तर फोन करने हेतु एक दुकान पर गया। उसने सोचा था, उसका दुखद समाचार किसी दैवी-प्रक्रिया द्वारा उसके दफ्तर में प्रतिध्वनित होकर वहां एक मातम-भरा माहौल बना चुका होगा। लेकिन काफी कोशिश के बाद जब अरविंद बाबू उसे फोन पर मिले तो, उसकी तबीयत खराब होने की बात सुनकर सहानुभूति दिखाना तो दरकिनार, वे ठहाका लगाकर हंसते हुए बोले—"सुनते हो, आज दफ्तर में खूब मज़े की बात हो गयी है···" गुस्से में रिसीवर रखकर वह चल पड़ा। दुकानदार ने जब 'ओ बाबू' कहकर आवाज लगायी, तब जाकर अविनाश को ध्यान आया कि वह टेलीफोन का पैसा देना भूल गया है।

आहिस्ता-आहिस्ता धूप तेज हो चली थी, और इस समय उसे अपने दुःस्वप्न के भय की अपेक्षा सामयिक भूख की ताड़ना

Digitized by srujanika@gmail.com

अधिक सता रही थी। वह एक सामान्य-से होटल में घुसा और नाश्ता मंगवाया। होटल में और कोई ग्राहक नहीं था, एवं अविनाश को ऐसा महसूस हुआ कि उसके आने से होटलवाले के रेडियो सुनने में विघ्न पड़ गया। जिससे कि वह असंतुष्ट दिखाई दे रहा था। नाश्ता आने में जितनी देर होती जा रही थी, अविनाश की भूख उतनी ही बढ़ती चली जा रही थी। वह होटल के बाहरवाले रास्ते को देखने लगा, जहां शहर का दैनिक जीवन हमेशा की तरह बीत रहा था। आवा-जाही में मग्न लोग व्यस्त और खुश दीख रहे थे। उसे अपने दुःख की छाया कहीं भी दिखाई नहीं दे रही थी। इस समय दुनिया उसे एक संवेदनाविहीन जगह लगने लगी। यहां तक कि चाय और नाश्ता देनेवाले बेयरे ने भी जरूरत से ज्यादा जोर से नाश्ते की प्लेट उसकी टेबुल पर रखी, और पानी का गिलास मांगने से पहले ही वहां से खिसक गया। अविनाश ने सोचा—नहीं, अब तो मर जाना ही अच्छा है।

भोरकी धुंधलाहट में जो दुःस्वप्न उस पर बुरी तहर से सवार था, दिन के उजाले में उसने उसकी अच्छी तरह जांच-पड़ताल की। पेट में कुछ पड़ने के बाद अब उसे शरीर में कुछ ताकत-सी लग रही थी एवं शहर के भीड़-भरे रास्ते पर बेखबर हो चलते समय उसका भय भी काफी कम गया था। उसने अपने-आप से प्रश्न किया कि उसने कैसे जाना, कि काली पोशाकवाला वह व्यक्ति भगवान है ? उसे जहां तक याद था, उस व्यक्ति ने तो कभी यह नहीं कहा कि मैं भगवान हूं। फिर भी, सपने में सारी बातें साफ-साफ और तर्कसंगत रूप में दिखाई नहीं देतीं; कई बातों को मन सहज ही ग्रहण कर लेता है। वह व्यक्ति भगवान के अलावा और कौन हो सकता है—अविनाश इस बात की कल्पना करने की कोशिश करने लगा। लेकिन अथक परिश्रम के बावजूद वह उस तरह की पोशाक पहने व्यक्ति को और किसी

Digitized by srujanika@gmail.com

भी चरित्र में स्थापित नहीं कर सका।

अब वह अपनी आसन्न मृत्यु की बात नहीं सोच रहा था, बल्कि दफ्तर न जाकर छुट्टी लिये हुए पूरे दिन को किस तरह बिताए, यही उसकी चिंता का विषय था। इस समय वह अपने कुलांगार बेटे, बीमा-पॉलिसी और पंचांग-उपन्यासों की रूपरेखा इत्यादि की बात भूल चुका था; बल्कि साथ में छाता न लाने के कारण पछता रहा था। एक दुकान की काँच की खिड़की के पास खड़े होकर उसने उन सभी चीजों की कीमत पूछनी शुरू कर दी, जिनके खरीदने की संभावना उसके लिए कतई नहीं थी। उसने फुटपाथ की दुकानों के खिलौनों को खूब अच्छी तरह से उलट-पलटकर देखा। इसके बाद फलों की दुकान पर जाकर एक गिलास फलों का रस पिया, यद्यपि उसे प्यास नहीं थी।

उसने घड़ी देखी, दिन के सिर्फ बारह बजे थे। इस समय और क्या किया जा सकता है—अविनाश सोच नहीं पा रहा था। घर लौटने की बात सोचते ही, अपनी पत्नी के हाथ में पहंसुल और उसके बिगड़े हुए मिज़ाज की छवि याद कर उस चिंता से अपने को निवृत्त कर लिया। ठीक उसी क्षण, कुछ ही दूरी पर उसने एक ऐसा दृश्य देखा, जिसने उसके खून को पानी कर दिया। भीड़ में से होकर भगवान आगे-ही-आगे चले जा रहे थे। उनके शरीर पर लंबी काली पोशाक थी, एवं उनकी ऊंचाई दस फुट न होने पर भी वे भीड़ में सबसे लंबे थे। अविनाश समझ गया कि अब उसकी मत्यु के लिए ज्यादा वक्त नहीं है। पल-भर में फिर से उसके दिमाग में अपने परिवार का भविष्य, अपूर्ण उपन्यास और रुपया जमा न की हुई पॉलिसी इत्यादि बातें दनाक् से घुस आयीं।

यह निश्चित रूप से उनकी चेतावनी की उपेक्षा करने की वजह से ही, उसके लिए भगवान का परिहासपूर्ण सबक था। मानो वे उसे बता देना चाहते थे कि उनको सपने में देखे हुए को

Digitized by srujanika@gmail.com

उसने नकारा है, इस बार वह उन्हें दिन दहाड़े सशरीर देखे एवं उनकी बात की वास्तविकता और भयावहता को समझे। इस बार देखते ही जैसे वे कह पड़ेंगे—"मैं इसी वक्त तुझे ले जाऊंगा !" अविनाश ने अपनी गुस्ताखी के लिए मन-ही-मन भगवान से क्षमा मांग ली।

गली के मोड़ पर भगवान के अदृश्य हो जाने के बाद अविनाश ने होशोहवास संभाला। अपने को स्थिर करते हुए उसने भगवान को खोजने का निश्चय किया और तेजी से कदम बढ़ाने लगा। काफी देर तक इधर-उधर तलाशने के बाद आखिर में दौड़ने लगा। लेकिन भगवान पूरी तरह गायब हो चुके थे, और उसने जितने भी लोगों से लंबी-काली पोशाक पहने व्यक्ति के बारे में पूछा, कोई कुछ नहीं बता पाया। बल्कि एक व्यक्ति उलटे उससे पूछने लगा कि उस व्यक्ति के दाढ़ी थी या नहीं ? जिसका उत्तर अविनाश नहीं दे पाया।

गली-गली ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अविनाश बुरी तरह थक चुका था। उसने करीब ही एक छोटा-सा तिकोना पार्क देखा, जिसमें कई पेड़ खड़े थे। वह पार्क में गया और एक पेड़ के नीचे पड़ी सीमेंट की बेंच पर बैठ गया। इस दौरान उसके मन में भय, थकान, परेशानी पश्चात्ताप इत्यादि अनेक भावनाएं हिलोरें लेने लगीं। कुछ देर विश्राम करने के बाद वह बेंच से उठा और पार्क से बाहर जाने के लिए कदम बढ़ाया। ठीक उसी वक्त पेड़ के दूसरी ओर, लंबी-काली पोशाक पहनकर सोया हुआ व्यक्ति उसे दीख पड़ा। उसकी सही ऊंचाई न मालूम पड़ने पर भी, वह व्यक्ति दीर्घकाय नहीं था। उसके सिर के नीचे एक पोटली थी और पास ही एक बंदर बंधा हुआ था। वह व्यक्ति खूब गहरी नींद में सो रहा था, और बंदर खुद ही विभिन्न तरह के खेल खेलने में मस्त था।

बिना किसी प्रतिक्रिया के अविनाश ने उस सोये हुए व्यक्ति

Digitized by srujanika@gmail.com

को कुछ देर तक देखा, और अन्त में पार्क से बाहर निकलकर दफ्तर जाने के लिए एक बस पकड़ी। लंच के बाद दफ्तर के सभी कर्मचारी अपनी-अपनी जगह पर आ चुके थे। अविनाश भी अपनी कुर्सी पर जा बैठा। अरविंद बाबू ने फाइल से मुंह उठाकर उसकी ओर देखा, और अविनाश ने धीमे स्वर में कहा--"तबीयत ठीक लगने लगी, इसलिए चला आया···" किंतु अरविंद बाबू किसी वजह से चिंतित लग रहे थे। उन्होंने उसकी बात को अनसुना करते हुए फिर से फाइल में सिर गड़ा लिया। अविनाश को अपने नये हाकिम और प्रोमोशन की बात याद आयी, और वह एक कागज लेकर दरखास्त लिखने लगा।

यकायक उसने आविष्कार किया कि उसने कागज पर 'डिअर गॉड' लिखा है। खीझते हुए उसने कागज को गुड़ीमुड़ी करके दूर फेंक दिया, और अन्य एक कागज पर साफ-साफ अपने प्रोमोशन की अर्जी लिखने लगा—रेस्पेक्टेड सर, इत्यादि।

Digitized by srujanika@gmail.com

दायित्व

परशराम ने देखा कि बस से उतरकर राजधानी में प्रवेश करते ही धरमूकाका यकायक बदल गए हैं। गांव में धरमू सभी के 'काका' थे। सभी उनकी बातें मानते थे। बाहर का कोई भी व्यक्ति आता तो सबसे पहले धरमू से मिलता। गांव में कोई भी समस्या उत्पन्न होती तो लोग धरमू से ही सलाह-मशविरा करने आते। उनकी बात टाल देने की हिम्मत किसी में नहीं थी। अधिक पढ़े-लिखे न होने पर भी धरमूकाका वाकई बुद्धिमान थे। पाप-पुण्य, भला-बुरा अच्छी तरह समझते थे और स्वार्थ से कोसों दूर रहते थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि धरमू को कभी किसी ने झूठ बोलते नहीं सुना था।

गांव में सिर उठाकर सम्मानपूर्वक रहनेवाला यह व्यक्ति, शहर में आते ही यकायक दब्बू बनकर परशराम पर पूरी तरह निर्भर हो गया। शहर के लोग, मकान, रास्ते, बाज़ार, सब धरमू को शत्रुतुल्य लगते थे। इतने समृद्ध, जनाकीर्ण और अनात्मीय माहौल में धरमू को घुटन-सी हो रही थी। वह जल्दी-से-जल्दी अपने गांव लौट जाना चाहता था। उसे तसल्ली सिर्फ इस बात की थी कि गांव से आते वक्त वह परशराम को साथ लिवा लाया था।

कुछ समय फौज़ में रहने की वज़ह से परशराम बाहर की

Digitized by srujanika@gmail.com

दुनिया से अच्छी तरह वाक़िफ था। वह गांव का सबसे अधिक साहसी युवक था, एवं गांव के हर दंगे-फसाद में मौजूद रहता था। गांव में कहीं भी शोरगुल होते ही वह अपनी खाकी कमीज पहन, हाथ में लाठी लेकर तुरंत निकल पड़ता, और भीड़ को चीरते हुए सीधे घटना-केन्द्र पर पहुंच जाता। घटना के बारे में बगैर कुछ समझे-बूझे तथा कसूरवार को जानने से पहले ही, लाठी उठाकर—"स्साले का सिर फोड़ दूंगा" कह उठता। उसकी रुद्र मुद्रा और धमकी से कई दंगा-फसादों की इतिश्री तत्काल हो जाती।

आज शहर आते समय उसने अपनी खाकी वरदी नहीं पहनी थी और इसके लिए उसे पछतावा हो रहा था। खाकी वरदी में वह एक सरकारी कर्मचारी की तरह लगता था। इसी वरदी की वजह से गांव के लोग उसे पुलिस, आबकारी, या वन-विभाग का कोई छुटभैया कर्मचारी समझकर सम्मान देते थे। हालांकि शहर में उस वरदी का कोई प्रभाव पड़नेवाला नहीं था, फिर भी उसके बगैर वह खुद को कमज़ोर महसूस कर रहा था।

मंत्री महोदय के घर का पता ढूंढ़ने के लिए ज्यों ही उन्होंने सड़क पर कदम रखा, धरमू के बदन से सटती हुई एक कार सांय् से निकल गयी। चौंककर धरमू दो कदम किनारे हट गया। इसी बीच पैदल चल रहे एक व्यक्ति ने चिल्लाकर कहा—"मर जाएगा रे बुढ़ऊ, देखकर चल!" गांव में इतने निरादरपूर्ण ढंग से कोई धरमू से बात नहीं करता था। उस व्यक्ति का सिर फोड़ डाले अथवा नहीं—इस बारे में पलभर सोचने के बाद, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए परशराम ने चुप रहना ही उचित समझा। अब धरमू ने परशराम का हाथ जोर से पकड़ रखा था और दोनों चले जा रहे थे।

यदि धरमू को पहले से मालूम होता कि शहर में इतनी तरह

Digitized by srujanika@gmail.com

को गाड़ियां, घोड़े, लोग और खतरे हैं, तो वह आने को कतई तैयार नहीं होता; लेकिन धरमू पर गांववालों की पूरी आस्था थी एवं हर समस्या का समाधान एकमात्र धरमू ही कर सकता है—ऐसा उनका विश्वास था। समस्या यह थी कि उनके गांव के करीब एक लघु जलसेचन-योजना का निर्माण हुआ था, जिसका जलभंडार तीन साल पहले ही भर चुकने पर भी, केनाल न होने की वज़ह से गांव के लोग सिंचाई की सुविधा से वंचित थे। इस समस्या के बारे में निचले दफ्तर से उन्हें जानकारी मिली थी कि प्रस्ताव ऊपर गया है। तीन वर्षों में उस प्रस्ताव के ऊपर से और ऊपर विभिन्न दफ्तरों में जाने के बाद भी समस्या का कोई हल नहीं निकल पाया था। आखिरी दफ्तर से पता चला था कि प्रस्ताव और भी ऊपर 'सरकार' के पास गया है।

सरकार कौन है ? क्या है ? समझना उन लोगों के लिए असंभव-सी बात थी; लेकिन सौभाग्यवश जलभंडार को बने तीन साल पूरे हुए ही थे कि आम चुनाव आ गया। ऊपर के सारे लोग नीचे से नीचे आते गये और आखिर में उनके गांव तक आ पहुंचे। शहर के जिन लोगों ने कभी गांव नहीं देखा था, अब गांव के घरों में घुसने लगे। जिन दो उम्मीदवारों के बीच मुकाबला था, गांव के लोग उनसे भी परिचित नहीं थे। चुनाव के अवसर पर ही गांव के लोग उन्हें जानने लगे थे तथा उनका नाम 'लंगड़ा' और 'काना' रख दिया गया। लंगड़ा, जोकि सत्तारूढ़ दल का उम्मीदवार था, गांव में पहले पहुंचा। गांव के लोग उसे धरमूकाका के पास ले गए। लंगड़े ने उन्हें गणतांत्रिक अधिकार, स्वायत्त शासन, मिश्रित अर्थनीति एवं तटस्थ विदेशनीति के बारे में बतलाया। किंतु इन बातों को सुनने के बाद धरमूकाका ने उससे सिर्फ एक ही सवाल किया—"केनाल कब बनेगा ?" लंगड़ा गांव के लोगों की संकीर्ण मनोवृत्ति देखकर हतोत्साहित हुआ एवं मुद्रास्फीति,

Digitized by srujanika@gmail.com

व्यक्ति-स्वातंत्र्य, राष्ट्रीयकरण इत्यादि पर उसके भाषण के बाद जब धरमू ने पुनः केनाल खुदने की बात पूछी, तो लंगड़ा वहां से उठकर चला गया।

कुछ दिनों के बाद दूसरा उम्मीदवार, जो वास्तव में काना न होकर मिचमिची आंखोंवाला था, आ पहुंचा। काना बुद्धिमान था। उसके गुप्तचरों को गांव में लंगड़े के आने की जानकारी मिल चुकी थी। काने ने गांव के लोगों को इकट्ठा करके सबसे पहले उनसे केनाल के बारे में पूछा। सत्तारूढ़ दल की अक्षमता के कारण केनाल का काम न हो सकने की बात उसने गांववालों को बतलायी, हालांकि गांव के लोग इस विषय से पहले ही अवगत थे। इसी बात को लेकर काने ने सत्तारूढ़ दल की आलोचना की, एवं गांव के लोगों को सत्ता के दुर्व्यवहार, मनमौजी शासन, तानाशाही तथा भाई-भतीजावाद इत्यादि विषयों पर भाषण दिया। लेकिन आखिर में काना भी सही तौर पर यह नहीं बतला सका कि केनाल कब खुदेगा ?

चुनाव का समय करीब आ जाने पर लंगड़ा पुनः गांव आ पहुंचा। उसे हारने का भय था; इसलिए उस गांव के सत्तर वोट वह गंवाना नहीं चाहता था। इस बार उसने धरमू को बुलवाकर लोकतांत्रिक अधिकार इत्यादि विषयों पर भाषण देने से पहले केनाल के बारे में वादा किया—कि उसके चुनाव में जीतने के पंद्रह दिनों के अंदर केनाल खुद जाएगा। साथ ही पानी की सुविधा के लिए उस गांव में दो कुएं खुदवा देने का भी वचन दिया। इसी तरह दूसरे गांवों में भी लंगड़े ने कुआं, तालाब, स्कूल, कॉलेज, बाजार, सड़क एवं जलसेचन की योजनाएं बनवाने के वादे कर डाले। सत्तारूढ़ दल के उम्मीदवार के रूप में लंगड़े पर लोगों का विश्वास जमा हुआ था, और कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव में लंगड़ा ही विजयी रहा।

Digitized by srujanika@gmail.com

चुनाव के बाद फिर सब कुछ शांत हो गया। गर्मी आने पर जल भंडार का पानी सूखने लगा, बारिश के दिनों में पुनः भंडार भर गया, और फिर गर्मी आ गयी। इसी बीच लंगड़ा पहले उपमंत्री और बाद में अपनी दलगत फूट का फायदा उठाते हुए मंत्री भी बन गया। गांव के लोग पुनः नीचे से ऊपर तक के दफ्तरों में केनाल के बारे में पूछताछ करने गये तथा सबसे ऊपरी दफ्तर से फिर मालूम हुआ कि प्रस्ताव और भी ऊपर 'सरकार' के पास गया है। इसी बीच किसी ने उन्हें खबर दी कि आजकल लंगड़ा ही सरकार है। यह खबर सुनकर कुछ लोग खुश हुए; किंतु परशराम ने कहा—"साले का सिर फोड़ दूंगा"। आखिर में गांव वालों ने तय किया कि धरमूकाका और परशराम जाकर लंगड़े से मिलेंगे और जिस तरह भी हो, केनाल खुदवाने की व्यवस्था करेंगे।

लेकिन अब लंगड़े से मुलाकात कर पाना इतना आसान नहीं था। राजधानी में उसका बंगला एक दुर्भेद्य दुर्ग-सा था, जिस पर प्रतिदिन सैकड़ों आपत्ति-अभियोग लेकर आनेवाले लोग आक्रमण करने की कोशिश करते थे। उनके दफ्तरी-कमरे के चारों तरफ कई व्यूह थे, जिसकी अंतिम सीमा बंगले के पोर्टिको, लॉन और फाटक लांघकर रास्ते तक आ पहुंची थी। इन सारे व्यूहों को पार करके लंगड़े के खास कमरे तक पहुंचना, एक समय-सापेक्ष योजना थी। जिसमें किसी-किसी को महीनों लग जाते थे। हालांकि ऐसे अनेक रणकुशल उद्योगपति, ठेकेदार, व्यापारी भी थे, जो सीधे लंगड़े तक पहुंचने के गोपनीय रास्ते जानते थे; और लंगड़े को अपना अधिकतर समय इन्हीं लोगों के काम के लिए लगाना पड़ता था।

रास्ता ढूंढ़ते-ढांढ़ते जिस वक्त वे लोग लंगड़े के बंगले के सामने आ पहुंचे, वहां अच्छी-खासी भीड़ जम चुकी थी। पिछले

Digitized by srujanika@gmail.com

कई दिनों से इंतजार करनेवाले लोग रास्ते के किनारे बिछौना बिछाकर सो रहे थे, और कुछ लोग इन प्रतीक्षारत लोगों के लिए खुली चाय की दुकान के पास इकट्ठा थे। उस समय तक धरमू काफी थक चुका था और लंगड़े से किसी तरह मुलाकात करके जल्द ही गांव लौट जाने के बारे में सोच रहा था। वे लोग प्रथम व्यूह के पास पहुंचे ही थे कि सफेद-झक्क कपड़े पहने एक व्यक्ति उनके पास आ पहुंचा। उस व्यक्ति ने उन्हें सिर से पांव तक अच्छी तरह देखने के बाद, धरमू के पैर से छः इंच की दूरी पर स्थित एक बिंदु को केन्द्र करके पान की पीक थूकी। वह व्यक्ति प्रथम व्यूह रक्षक था। उसने धरमू के पास कितना पैसा है, इस बारे में पूछा। धरमू गांव तक लौट जाने का किराया दिखा ही रहा था कि रास्ते पर एक कार आकर रुकी, और वह आदमी उन लोगों को पूर्णतः भूलकर गाड़ी से उतरते हुए व्यक्ति के पास जा पहुंचा।

दूसरे व्यूह का रक्षक था एक बंदूकधारी पुलिस वाला जो उस वक्त एक खुले बदनवाले लुंगीधारी व्यक्ति की बीड़ी से अपनी सिगरेट सुलगा रहा था। लड़ाई के नियमों से पूर्णतः बेख़बर धरमू फाटक खोलकर सीधे अंदर घुस गया। पुलिसवाला बंदूक नीचे डालकर धुआं उड़ेलता हुआ उसकी ओर दौड़ा आया और चिल्लाया—"क्यों बे बुड्ढे, कहां घुसा चला आ रहा है?" वह धरमू को धकेलने ही वाला था कि परशराम ने उसका हाथ पकड़ लिया। परशराम और भी धक्कमपेल करनेवाला था, किंतु धरमू ने उसे रोक लिया और पुलिसवाला उन्हें रास्ते तक फिर हांक आया।

पान खा रहे उस व्यक्ति के पास कार से उतरनेवाला और कोई ग्राहक न होने की वज़ह से, वह अनुग्रहपूर्वक धरमू के पास लौट आया और जमीन पर पालथी मारकर बैठते हुए धरमू से

Digitized by srujanika@gmail.com

बैठने को कहा। परशराम उस वक्त, उस पुलिसवाले के शरीर का कौन-कौन-सा हिस्सा किस तरह तोड़ेगा—इस बारे में एक निहायत ही असंभव किंतु रोचक योजना बना रहा था।

जब धरमू ने उस व्यक्ति से अपने राजधानी आने का अभिप्राय बतलाया, तो उस व्यक्ति ने कहा—"दरखास्त लिखनी होगी; कागज पर लिखकर दिए बगैर कोई भी सरकारी काम नहीं होता।" परशराम ने झुंझलाकर कहा, "वोट मांगते वक्त तो दरखास्त लिखकर हमसे वोट नहीं मांगा था!" इस बात को अनसुनी करते हुए उस व्यक्ति ने कहा—"कचहरी में दरखास्त लिखनेवाले लोग बैठे हैं, जाकर दरखास्त लिखवा लाओ!"

कचहरी काफी दूर थी। वहां तक पहुंचने पर धरमू और भी थक गया था। पेड़ के नीचे टाइपराइटर लेकर बैठे हुए एक व्यक्ति ने उन्हें देखकर पहले 'पांच रुपया' कहा। उस समय तक शहर की सारी व्यवस्थाओं से परशराम उकता चुका था। उसने कहा, "चलो काका, गांव लौट चलें। ये स्साले कोई कुछ नहीं करेंगे।" किंतु धरमू ने कहा, "यहां तक आने में जब इतना रुपया खर्च हो ही गया है, तो कुछ रुपये और सही! लेकिन काम किसी तरह हो जाए"···आखिरकार चार रुपये में बात पक्की हो गई। केनाल शीघ्र खुदने से संबंधित एक साफ-सुथरी दरखास्त लेकर वे लोग पुनः दुर्ग के पास लौट आए।

उस समय वहां का नक्शा इतना बदल चुका था कि पहले तो धरमू को इसी बात का संदेह हुआ कि कहीं वे गलत जगह तो नहीं पहुंच गए? वहां इस समय कोई भी नहीं था, चाय की दुकान भी वहां से उठ चुकी थी। पान चबाता हुआ व्यक्ति और सिगरेट पीता हुआ पुलिसवाला भी वहां नहीं था। फाटक खुला पड़ा था और लॉन में गायें चर रही थीं। उस वक्त मकान में सिर्फ एक लड़के-नुमा नौकर को छोड़कर और कोई नहीं था। वह उन लोगों को

Digitized by srujanika@gmail.com

देखकर आश्चर्यचकित हुआ और बोला—"मंत्री सचिवालय चले गए।"

लड़के से सचिवालय का रास्ता पूछकर धरमू ने पुनः अपनी यात्रा प्रारंभ कर दी। अब तक परशराम यह जान चुका था कि यहां कोई काम-धाम होने की उम्मीद नहीं है; लेकिन धरमू की बात मानकर वह उसके पीछे-पीछे चलने लगा। मन-ही-मन वह कल्पना करता जा रहा था कि जल्दी ही दुबारा चुनाव हो, और इस बार अगर लंगड़ा वोट मांगने आए तो वह उसकी दूसरी टांग भी तोड़ डालेगा।

सचिवालय एक अलग तरीके का दुर्ग था, जिस पर आक्रमण करने का कौशल अधिक साफ-सुथरा था। यहां का पुलिसवाला सिगरेट नहीं पीता था, एवं स्वागत-कक्ष में बैठा व्यक्ति करीब रखी पीकदानी में पान की पीक डालता था। उसने धरमू से सम्मानपूर्वक नाम पूछकर रजिस्टर पर सुंदर-सुंदर हरफों में 'धर्मदास' लिख लिया। धरमू से उसके आने का अभिप्राय पूछने के बाद उसे एक छोटा-सा कागज देते हुए उसने कहा—"अगले महीने की नौ तारीख को मंत्री महोदय से मुलाकात हो सकेगी।"

उस व्यक्ति से ज्यादा बातचीत करने में कोई फायदा नहीं था, क्योंकि अब वह किसी और व्यक्ति से उसके आने का अभिप्राय पूछकर तारीख देने में व्यस्त हो गया था। धरमू अब समझ गया था कि वह हार चुका है, और लंगड़े से मुलाकात कर पाना संभव नहीं है। विशेषकर परशराम के सामने उसकी इस दयनीय हालत ने धरमू को हीन बना दिया था। हालांकि अभी तक परशराम गांव लौट चलने की रट लगाये हुए था, मगर जब धरमू ने बस पकड़ने की बात कही, तो परशराम ने उसे धीरज बंधाते हुए कहा—"नहीं काका, मंत्री के डेरे पर चलकर फिर एक बार कोशिश करते हैं। बस के लिए तो अभी काफी वक्त है…"

Digitized by srujanika@gmail.com

इस बार धरमू चुपचाप परशराम के पीछे चल दिया।

बाजार में धरमू को चाय-नाश्ता करवाकर जब परशराम पुनः कोठी के सामने पहुंचा, वह जगह फिर से एक सक्रिय रण-भूमि का स्वरूप अख्तियार कर चुकी थी। चाय दुकानवाला, पुलिसवाला, परोपकारी व्यक्ति सभी अपने-अपने निर्धारित स्थान पर तैनात थे। पुलिसवाले ने उन्हें पहचान लिया और व्यंग्य कसते हुए बोला—"क्यों बे, फिर चले आये ?" इस बार परशराम उससे तर्क न करते हुए विनयपूर्वक बोला—"भैया, हमें जरा मंत्री से मिलवा दो।" लेकिन पुलिसवाला नहीं पिघला। वह उनकी ओर बिना देखे बोला—"स्साले सभी चले आते हैं, मंत्री से मिलने ! जैसे मंत्री इनका नौकर है।"

अब परशराम पान चबानेवाले परोपकारी व्यक्ति के पास गया। उसे देखकर पहले तो उस व्यक्ति ने उसके पास 'कितने रुपये हैं' पूछा, लेकिन फिर तुरन्त उन्हें पहचानते हुए 'दरखास्त लाये या नहीं' इस बारे में पूछा। उसके हाथ में टाइप किया हुआ कागज देने के बाद परशराम ने हाथ जोड़कर नतमस्तक होते हुए कहा—"साहब, किसी भी तरह हम लोगों को जरा मंत्री महोदय से मिलवा दो।" उस व्यक्ति ने दरखास्त देखी और कहा—"आओ मेरे साथ।" इस बार पुलिस ने उन्हें नहीं टोका और वे लोग अंदर के लॉन के करीब पहुंचे, जहां पहले से ही ढेर सारे लोग इकट्ठा थे। उस व्यक्ति ने उन्हें दरखास्त लौटा दी और उन्हें वहीं खड़ा करके अन्दर चला गया।

कुछ देर के बाद 'लंगड़ा' बाहर आया। इस एक साल के अंदर वह काफी मोटा हो गया था। अब उसके चेहरे पर विनम्रता की जगह स्वाभिमान था। खड़े हुए लोगों पर एक सरसरी निगाह डालने के बाद लंगड़े ने अपना भाषण शुरू कर दिया—"उपस्थित भाइयो और बहनो ! मैं जानता हूं, आप लोग ढेर सारी समस्याएं

Digitized by srujanika@gmail.com

लेकर मेरे पास आये हैं। लेकिन आप ज़रा देश के बारे में भी सोचिए। हमारे देश की सरहद पर शत्रु मौके की ताक में बैठे हैं। देश में महंगाई, चोरी-डकैती दिनों-दिन बढ़ती चली जा रही है। इन परिस्थितियों में सिर्फ अपने-अपने स्वार्थ की बातें सोचने से हमारा काम नहीं चलेगा—हमें देश के बारे में भी सोचना होगा। याद रखिए, भाइयो और बहनो, देश का दायित्व आपके कंधों पर है···"

बस, इतना कहने के बाद लंगड़ा जिस तरह यकायक आया था , उसी तरह यकायक चला गया। भौंचक्का-सा परशराम यह सोच ही रहा था कि अब क्या करें, तभी वह परोपकारी व्यक्ति उनके करीब आया और बोला—"तुम लोगों का नसीब अच्छा है; एक ही दिन में मुलाकात हो गयी···" परशराम ने खामोश रहते हुए अपने हाथ में लिया हुआ कागज उसे दिखलाया। उस व्यक्ति ने कहा—"मुझे दे दो, मैं मंत्री महोदय को दे दूंगा। तुम्हारी दरखास्त सही जगह पहुंच जाएगी।"

राजधानी से गांव जाने वाली बस में पूरी रात लग जाती है। परशराम और धरमू सिर्फ थके ही नहीं थे, बल्कि शांत भी पड़ गए थे। परशराम धरमूकाका की ओर देखने का साहस नहीं कर पा रहा था, क्योंकि धरमू काफी चिंतित दिखलाई दे रहा था, मानो उसके सिर पर दायित्वों का बोझ हो। सुबह-सुबह जब बस गांव के करीब आकर रुकी, परशराम ने धरमू को नींद से जगाया और उसके बाद गांव तक की थोड़ी-सी दूरी दोनों पैदल तय करने लगे। धरमू अब तक खामोश था, लेकिन पूरी रात बीत जाने के बावजूद परशराम के सिर में अभी तक आग लगी हुई थी। गांव के सिरे पर पहुंचकर उसने कहा, "काका, मैं जरा घर होकर आता हूं···"

घर जाकर परशराम ने सबसे पहले अपनी खाकी वरदी

Digitized by srujanika@gmail.com

निकाली और उसे पहनते हुए, वह 'किस-किसका सिर फोड़ेगा' इसकी सूची मन-ही-मन तैयार करने लगा। इस सूची में अधिकारी, पुलिस, टाइप करने वाला व्यक्ति, मंत्री—कोई बाहर नहीं थे। मिलिटरी की वरदी पहनकर हाथ में लाठी लिये हुए जब परशराम बीच-गांव में पहुंचा, धरमूकाका किसी के बरामदे में गांव के लोगों से घिरा बैठा उन्हें राजधानी की बातें बतला रहा था। तभी परशराम ने धरमू को पहली बार झूठ बोलते सुना—धरमू गांववालों से कह रहा था—हम लोग बंगले के पास पहुंचे ही थे कि मंत्री महोदय आये, और सम्मानपूर्वक हमें अपने साथ अंदर लिवा ले गए…

Digitized by srujanika@gmail.com

खिड़की

जिस दिन से अपनी शादी के बारे में सोचना शुरू किया था, उसी दिन से सावित्री ने अपने भावी पति के बारे में एक मोटी-सी धारणा बना ली थी। पढ़ाई बीच में ही छोड़कर उसने शादी की प्रतीक्षा घर में रहकर शुरू कर दी, और अपनी इस धारणा को एक निर्दिष्ट रूप देने लगी। काल्पनिक युवक के चेहरे और शरीर के विभिन्न अंगों में सावित्री अपने प्रिय फिल्म-स्टारों की आंख, नाक, होंठ इत्यादि लगाकर अब एक निर्दिष्ट प्रतिमूर्ति बनाने में कामयाब हुई थी। यह आदर्श युवक देखने में गोरा और सुंदर था, एवं अपनी ऊंचाई को ध्यान में रखकर सावित्री ने उसकी ऊंचाई पांच फुट आठ इंच से अधिक नहीं होने दी थी। वह सिगरेट पीने का आदी था एवं सावित्री को संदेह था कि बीच-बीच में वह शराब पीने के लिए भी उत्सुक रहता था। सावित्री उसे शराब नहीं पीने देती थी, बल्कि सिगरेट पीने के लिए उत्साहित करती थी। आंखें बंद करने पर सावित्री देखती थी कि वह युवक उसकी सहेलियों की ओर अनावश्यक कौतूहल से घूरता था। इस पर सावित्री मन-ही-मन कहती—"ठीक है, शादी के बाद सब ठिकाने लगा दूंगी !"

घर में उसकी शादी को लेकर जो भी बातचीत और तैयारियां हो रही थीं, सावित्री उन सबसे अपने को दूर रखती थी। हालांकि

Digitized by srujanika@gmail.com

अभी तक लड़का नहीं मिला था, लेकिन सावित्री की मां अभी से विवाह की छोटी-मोटी चीजें जुटाने लगी थीं। सावित्री की शादी के लिए साड़ियां और गहने एक बक्से में रखे थे; यद्यपि आर्थिक परेशानियों की वजह से बक्स काफी खाली था। सावित्री की मां उस खाली जगह को साबुन, केश-तेल, और तकिया-जैसी सस्ती लेकिन आवश्यक चीजों से भरने लगी थीं। सावित्री के पिता अपने दफ्तर के समय के अलावा बाकी समय सावित्री की शादी को लेकर बिताते थे। वे इस विषय में विशेष कुशल नहीं थे, एवं उनकी सारी कोशिश सिर्फ चिंतित रहने तक ही सीमित थी। लेकिन परिवार के अन्य लोगों ने सावित्री के लिए दूल्हा खोजने के काम को एक चैलेंज के रूप में स्वीकार कर लिया था, एवं बीच-बीच में कई असंभव और अनोखे रिश्ते लेकर पहुंचते थे। कुछ ही महीनों में, अमेरिका में रह रहे डॉक्टर, प्रवासी इंजीनियर, गांव के प्राध्यापक, रेलवे के भ्रमणशील ऑफिसर आदि विभिन्न पेशों से जुड़े पात्रों के नाम-पते, राशि-नक्षत्रों की खबरें जुटने लगीं; लेकिन विवाह तय नहीं हो पाया।

यह समय सावित्री के लिए कुछ उत्कंठाभरा लेकिन आनंद-दायक समय था। उसके सिर पर अब पढ़ाई की जिम्मेदारी नहीं थी एवं शादी के बाद इस घर से चली जाएगी—सोचकर घर के सभी लोग उसे अत्यधिक चाहने लगे थे। इस तरह के जिम्मेदारी-रहित और प्यार भरे एक स्वतंत्र संसार में उसने अपने को एक स्वप्नमय माहौल में छोड़ दिया था। उसके चारों तरफ लड़के का घर, झुमका, पाजेब, स्कूटर, मिथुन राशि, नागस्व गोत्र इत्यादि के बारे में जो तर्क-वितर्क और विचार-विमर्श होते रहते थे, उनसे सावित्री का कोई सरोकार नहीं था। वह तो ऐसे समय में अपने काल्पनिक युवक के बारे में और भी अधिक गहराई से सोचने लगती थी। समय मिलने पर सावित्री उसके साथ प्रेमालाप भी

Digitized by srujanika@gmail.com

करती थी, लेकिन और अधिक घनिष्ठ संबंध की इच्छा उसने विवाह होने तक मन से अलग कर दी थी।

कई तरह के रिश्तों की जांच-पड़ताल करने के बाद भी काफी दिनों तक विवाह का कोई संतोषजनक हल नहीं मिल पाया, एवं सब यह सोचकर हतोत्साहित हो गये कि अब इस साल सावित्री का विवाह नहीं हो सकेगा। ठीक उसी समय किसी प्रार्थी के अभिभावक ने कुंडली के मिलान, दहेज की राशि, कन्या की ऊंचाई इत्यादि के बारे में जो ऊंचे मानदंड रखे थे, उससे कुछ खिसक आये और सावित्री का विवाह देखते-देखते तय हो गया। अब वाद-विवाद की बातें एकाएक बदल गयीं एवं सावित्री के चारों तरफ निमंत्रण-पत्र, दूल्हे का सूट, शामियाना, रसोइया तथा लाउडस्पीकर-जैसे फालतू और नीरस शब्द गूंजने लगे। सावित्री ने इन्हें भी सुनने से साफ इन्कार कर दिया और अपने स्वप्नलोक से टस-से-मस नहीं हुई। यहां तक कि विवाह के हो-हल्ले तथा मंडप में बैठकर उसी अज्ञात युवक के हाथ में हाथ रखने, एवं गरमी के मौसम में अग्निकुण्ड के चारों तरफ फेरा लगाते वक्त भी उसने अपने उस खूबसूरत काल्पनिक युवक को अपने से अलग नहीं होने दिया था।

पात्र और दूल्हा से अब पति के रूप में उत्तीर्ण हुए व्यक्ति का प्रथम दर्शन सावित्री के लिए काफी निराशापूर्ण था। श्रीनिवास सौंदर्य, ऊंचाई, रंग और व्यक्तित्व में सावित्री के मानस-पुरुष के बिल्कुल विपरीत था। उसके साथ श्रीनिवास की पहली बातचीत गद्यमय और रोमांचरहित थी, एवं उनके थोड़े-से परिचय की प्रथम घनिष्ठता सावित्री के लिए अरुचिकर और नैराश्य भरी थी। श्रीनिवास को थोड़ा जानने-समझने के बाद सावित्री ने माना कि वह धर्मपरायण था; सिगरेट और शराब पीना तो दूर की बात है, वह मांस-मछली तक नहीं खाता था एवं पूरा शाकाहारी था।

Digitized by srujanika@gmail.com

श्रीनिवास को और थोड़ी अच्छी तरह जानने के बाद सावित्री ने यह भी आविष्कार किया कि श्रीनिवास, दूसरी औरत तो दूर की बात है, उसकी ओर भी खूब सकुचाता-सा देखता है और बहुत कम बातें करता है।

श्रीनिवास रेलवे में नौकरी करता था, एवं एक छोटे-से स्टेशन का स्टेशन-मास्टर था। शादी के बाद सावित्री ने जो चंद दिन श्रीनिवास के परिवार के साथ बिताये, उस दौरान वह सिर्फ उस अनदेखे स्टेशन के बारे में ही सोचा करती थी। रेल, रेलयात्रा, स्टेशन, ये सब सावित्री के दिल में पुलक भरी सिहरन ला देते थे, जो संभवत: बचपन की किसी याद, सिनेमा में देखे किसी दृश्य या कहानी से संबंधित थे। हालांकि उस स्टेशन की काल्पनिक छवि उसे वाकई हताश कर रही थी; फिर भी वह अपनी पहली हताशा को भूलने के लिए एक नये सपने में खोने लगी थी।

छुट्टियां खत्म होने पर जब श्रीनिवास ने अपनी नौकरी पर जाने के लिए ट्रेन पकड़ी, तो सावित्री बेहद खुश हुई। वह अपने पति के घुटनभरे पारिवारिक घेरे से मुक्ति चाहती थी, एवं श्रीनिवास की छुट्टियां खत्म होने की प्रतीक्षा कर रही थी। मानो यह रेलयात्रा उसके लिए पलायन का टिकट था, जिसे हाथ में लिये हुए वह अपने बचपन की यादों, आशा-अभिलाषाओं को पीछे छोड़ती हुई किसी नये संसार में चले जाने की सोच रही थी। वह एक ऐसा माहौल चाहती थी, जहां अपनी प्रिय सहेलियों की प्रश्न-भरी निगाहों को टालकर पुनः अपने में खो सके। इसलिए जब रात के तीसरे पहर वे अपने अंधकाराच्छन्न, निद्रित स्टेशन पर उतरे तो सावित्री खूब खुश हुई। पास ही जो अकेला मकान था, वह श्रीनिवास का क्वार्टर था, वह भी सावित्री को अच्छा लगा।

दूसरे दिन सुबह वह ट्रेन गुजरने की आवाज से जागी। तब

Digitized by srujanika@gmail.com

तक श्रीनिवास स्टेशन जाने को तैयार हो चुका था। उसके चले जाने पर सावित्री सभी कमरों में जा-जाकर मकान से परिचित होने की कोशिश करने लगी। पासवाले कमरे में अन्य चीजों के अलावा एक कोने में देवी-देवताओं की तस्वीर और पूजा-सामग्री रखी थी, तथा कमरे की सारी चीजें करीने से थीं। सावित्री सोने के कमरे में लौट आयी और खिड़की खोलकर बाहर की ओर देखने लगी। इस खिड़की से, एक विस्तृत खुले मैदान से होकर गुजरी रेल की पटरियों के सिवाय और कुछ भी नहीं दिखता था। किवाड़ खोलकर सावित्री बाहर आयी। इस मकान के करीब और कुछ भी नहीं था; रेलवे के बाकी मकान कुछ दूरी पर थे। सावित्री ने आसमान की ओर देखा, लेकिन उसकी आंखें नीचे उतरकर खुले मैदान में बिछी पटरियों पर पुनः जा पड़ीं। वह अपने पुराने संसार से जो निर्वासन चाहती थी, वह वहां मौजूद था।

सावित्री पड़ोसियों के प्रति उदासीन थी, अत: घर के काम-काज में मन लगाने लगी। रेलवे का एक आदमी आकर घर का सारा काम निबटा जाता था; इसलिए सावित्री को विशेष परिश्रम और समय नहीं लगाना पड़ता था। इस छोटे-से स्टेशन में रेल-गाड़ियों के आने का समय अद्भुत था, और इसीलिए श्रीनिवास के स्टेशन जाने का समय भी विचित्र था। श्रीनिवास कब सोकर उठता था—सावित्री नहीं जान पाती थी। खूब सवेरे पूजा-पाठ समाप्त करके, सुबह की पहली गाड़ी के समय श्रीनिवास स्टेशन पहुंच जाता था। बीच-बीच में वह घर आया करता था, एवं रात को आखिरी गाड़ी चली जाने के बाद काफी देर से घर लौटता था। श्रीनिवास काफी धैर्यवान और शांत स्वभाव का था एवं इस बात की पूरी कोशिश करता था कि सावित्री को किसी प्रकार का कष्ट न हो; अत: सावित्री के नाराज़ होने का कोई सवाल ही नहीं

Digitized by srujanika@gmail.com

उठता था।

यहां पहुंचने के बाद कुछ दिन सावित्री ने अपने माता-पिता, भाई-बहन को पत्र लिखकर बिताये। उसने सबको यही लिखा कि 'ये बहुत अच्छे हैं' यद्यपि इस समय वह तय नहीं कर पा रही थी कि भले व्यक्ति की परिभाषा क्या है। कुछ दिनों बाद उन पत्रों के ज़वाब आये। उसके घरवालों ने परिवार की हर छोटी-से-छोटी बात लिखी थी,जो अब सावित्री की रुचि से परे थीं। उसकी-सहेलियां उसके निपट व्यक्तिगत जीवन की सारी बातें विस्तार से जानना चाहती थीं, लेकिन सावित्री ने उनका जवाब नहीं दिया। कुछ ही दिनों में पत्रों के आदान-प्रदान का सिलसिला भी थम गया, और उसके घर से आनेवाले संक्षिप्त पत्र अब सिर्फ कुशलक्षेम तक ही सीमित रह गये।

श्रीनिवास बहुत कम बातें करता था एवं जितनी देर भी घर में रहता था, सावित्री के साथ उसकी बातचीत केवल आवश्यक विषयों पर ही हुआ करती थी; यहां तक कि रात की घनिष्ठ घड़ियां भी खामोशी से गुज़रती थीं। सावित्री की अधिकांश रातों की अनुभूति निराशाजनक थी, हालांकि वह जानती थी कि श्रीनिवास के साथ बातचीत करके वह अपनी इस निराशा को दूर कर सकती है; लेकिन श्रीनिवास की ओर से इस दिशा में कोई पहल अथवा प्रयास न देखकर चुपचाप रहना ही उचित समझती थी। फलस्वरूप कुछ ही दिनों में सावित्री अपने यौन जीवन के प्रति उदासीन हो गयी और श्रीनिवास के आग्रह को टालने लगी। श्रीनिवास सावित्री की सभी बातों से सहानुभूति रखता था, एवं उसके निषेध को सम्मान देते हुए उसने खुद को उसकी घनिष्ठता से दूर कर लिया। अतः उनमें कोई दैहिक संबंध भी नहीं रह गया।

सावित्री विशेष धार्मिक नहीं थी, लेकिन इन दिनों वह देवी-

Digitized by srujanika@gmail.com

देवताओं की तसवीरों के सामने कुछ-कुछ समय बिताने लगी थी। सुबह की ड्यूटी खत्म करके घर आते समय श्रीनिवास प्रतिदिन जो अखबार लाता था, सावित्री उसे पूरा पढ़ जाती थी। इस पढ़ाई के साथ-साथ अब उसने तसवीर के पास रखी धार्मिक पुस्तकें भी पढ़नी शुरू कर दी। श्रीनिवास के स्टेशन आने-जाने की तरह सावित्री ने भी अपने जीवन की एक दिनचर्या बना ली थी। वह वहां से गुजरनेवाली हरेक ट्रेन से वाकिफ थी, एवं ट्रेन आने की आवाज दूर से सुनते ही अपना सारा कामकाज छोड़-छाड़कर, खिड़की के पास खड़ी होकर खुले मैदान में एक ओर से दूसरी ओर जाती ट्रेन को देखती थी, और अगली गाड़ी कब आएगी – इस बारे में सोचने लगती थी।

ट्रेन उसके घर के सामने से होकर गुजरते समय, स्टेशन पहुंचने से पहले धीमी हो जाती थी। शाम को पैसेंजर ट्रेन जाते समय सावित्री खूब ध्यान लगाकर, गाड़ी के दरवाजों पर खड़े तथा खिड़कियों से दिख रहे लोगों को देखा करती थी। उस वक्त वह सज-संवर रही होती थी। खूब अच्छी तरह जूड़ा बांधकर सिंदूर की बिंदी लगाती, और अपनी सबसे सुंदर साड़ी पहनकर शाम की गाड़ी का इंतजार करती थी। प्रत्येक गाड़ी को वह एक गहरे विस्मय से देखा करती थी, मानो हर गाड़ी उसके लिए एक नयी अनुभूति थी।

बारिश के दिनों की गाड़ियां और भी ज्यादा रहस्यमय हो आवाजाही करने लगीं। उनके एकांत घर में, बारिश हो जाने के बाद घर के चारों तरफ पानी की धारें बहने लगती थीं एवं बारिश के परदे में छुक्-छुक् करती पैसेंजर आहिस्ता-आहिस्ता सावित्री की नजरों से गुजर जाती थी। गाड़ी में बैठे लोग झिलमिलाते-से दिखाई देते थे, लेकिन सावित्री के लिए वे लोग और अधिक सुंदर एवं रहस्यमय थे।

Digitized by srujanika@gmail.com

सावित्री के खाने-पीने पर श्रीनिवास की ओर से कोई प्रतिबंध नहीं था। जब भी उसकी इच्छा होती, मांस-मछली खाती। बारिश के दिनों में ही एक रोज उनके घर काम करने वाला व्यक्ति बाजार से मछलियां ले आया, जिनमें एक मछली जिंदा थी और छटपटा रही थी। न जाने क्या सोचकर सावित्री ने उस मछली को हाथ में उठा लिया और ले जाकर बाहर बह रहे पानी की धार में छोड़ दिया। बाद में उसने बाकी मछलियां भी लौटा दीं, और उसी दिन से शाकाहारी हो गयी।

शादी के एक साल बाद, कुछ दिनों के लिए सावित्री मायके गयी। हालांकि वहां उसके माता-पिता, भाई-बहन सभी ने उसका खूब आदर किया; लेकिन वह अपने को उस पुराने माहौल में फिर से नहीं खपा सकी। वह जानती थी कि यह अनुराग क्षणिक है और उसे फिर अपनी उसी स्थायी जिंदगी में लौट जाना है। इसलिए उसने मायके में अपने रहने के समय को और कम कर दिया, और कुछ ही दिनों बाद पुनः श्रीनिवास के पास लौट आयी।

हालांकि उसका स्वास्थ्य अच्छा था, फिर भी सुबह उठते ही सावित्री को एक अजीब-सी कमजोरी महसूस होती थी एवं कोई भी काम करने की इच्छा नहीं होती थी। दिन भर उसे कोई निराशा घेरे रहती थी; यहां तक कि शाम की गाड़ी के वक्त जूड़ा बांधकर अच्छी साड़ी पहनना भी अब उसे कष्टदायक लगने लगा था। अब वह रंगीन साड़ी पहनना छोड़कर सफेद साड़ी पहनने लगी थी। उसमें यह बदलाव देखकर एक दिन श्रीनिवास ने वहां से अपना तबादला करवा लेने के बारे में उससे पूछा था, लेकिन सावित्री ने मना कर दिया।

ठंड के दिन जल्दी-जल्दी सरकने लगे। पैसेंजर दिन रहते ही पहुंच जाती थी। इन दिनों रात में श्रीनिवास के आने की

Digitized by srujanika@gmail.com

प्रतीक्षा करना सावित्री को काफी उबाऊ लगता था, मानो प्रतीक्षा का कोई अन्त ही न हो। सावित्री ने श्रीनिवास से कहा—"मुझे कोर्स की किताबें ला दो, मैं परीक्षा दूंगी।" थोड़े ही दिनों में श्रीनिवास ने सारी किताबें मंगवा दीं। कुछ दिन तक सावित्री ने उन किताबों को खूब मन लगाकर पढ़ा। लेकिन पढ़ाई के दौरान भी वह ट्रेन का इंतजार करती थी तथा उसकी आवाज दूर से सुनते ही पढ़ना छोड़कर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो जाती थी। गाड़ी चली जाने के बाद वह पुनः किताबों के पास लौट आती थी, लेकिन फिर उसका मन पढ़ने में नहीं लगता था। वह किताबों को एक ओर सरकाकर बिछौने पर लेट जाती।

इन दिनों रेडियो ही उसका एकमात्र साथी था; अधिकांश समय वह लेटे-लेटे रेडियो से गाने सुना करती थी। लेकिन बहुधा होता यह था कि वह रेडियो में आ रहे गानों को न सुनकर अपने ही खयालों में खोयी रहती थी। कभी-कभी किसी पुराने गाने की पंक्ति सुनकर उसे गुजरी हुई बातें याद हो आती थीं, परंतु बाहर से गुजरती ट्रेन की आवाज सुनकर वह सब कुछ भूल जाती थी। इसी तरह एक रोज पढ़ते समय, रेडियो में एक अति परिचित गाना बजने लगा, जो कि उसके प्रिय गायक का प्रसिद्ध रोमांच-पूर्ण गाना था एवं जिसने उसको शादी के दिन बार-बार लाउड-स्पीकर में बजकर उसे बेचैन कर दिया था। गाना सुनते हुए वह रेडियो के पास जा खड़ी हुई; लेकिन ठीक उसी वक्त बाहर ट्रेन की आवाज सुनते ही वह खिड़की के पास जाकर ट्रेन देखने लगी। गाड़ी चली जाने के बाद वह फिर से रेडियो के पास लौट आयी, किंतु तब तक वह गाना खत्म हो चुका था। सावित्री ने पढ़ाई की किताबें बांध-बूंधकर एक ओर धर दीं, अपनी रंगीन साड़ी उतार-कर सफेद साड़ी पहन ली; और उस दिन श्रीनिवास के घर लौटने पर उसने कहा कि वह अब नहीं पढ़ेगी, बल्कि श्रीनिवास यदि

Digitized by srujanika@gmail.com

उसके लिए कहीं से कहानी-उपन्यास मंगवा दे तो वह पढ़ लिया करेगी।

श्रीनिवास किसी भी सूरत में सावित्री को खुश देखना चाहता था। कुछ ही दिनों के अंदर एक दिन शाम को दोनों हाथों में किताबों से भरे दो थैले लटकाए, पंद्रह-सोलह साल का एक लड़का उनके घर आ पहुंचा। उस वक्त ट्रेन जा चुकी थी और सावित्री अन्य-मनस्क-सी खिड़की के पास बैठी चाय पी रही थी। उस दिन सावित्री का मन ठीक नहीं था, इसलिए उसने लड़के से कोई बातचीत नहीं की, और उसके थैले में ऊपर रखी किताब उठा ली। वह लड़का यह कहकर चला गया कि दो दिन बाद आकर वह किताब बदल जाएगा। हाथ में किताव लिये हुए कुछ देर तक सावित्री बाहर की ओर देखती रही। जब वह लड़का स्टेशन के रास्ते में अदृश्य हो गया, तब सावित्री ने बत्ती जलाकर किताब देखी। यह एक सस्ता रोमांचपूर्ण उपन्यास था, जो कि सफर में यात्रियों के मनो-रंजन का साधन था। लेकिन कुछ पृष्ठ पढ़ने के बाद सावित्री स्वयं इस उपन्यास की घटनाओं में डूब गई और चरित्रों के सुख-दुःख में उसने खुद को भी शामिल कर लिया। बिछौने पर लेटे-लेटे उसने उसी रात किताव पूरी पढ़ ली।

दो दिन बाद, सावित्री खिड़की पर खड़ी रेलवे-लाइन को देख रही थी, तभी दोनों हाथों में दो थैले पकड़े हुए, धीरे-धीरे चल रही गाड़ी से वह लड़का ठीक उसके घर के सामने उतरा और उसके पास आ पहुंचा। इस बार सावित्री ने उस लड़के को अच्छी तरह से देखा, चलती गाड़ी से उतरने की वजह से कुछ फटकारा और फिर चाय पिलायी। उसके थैले की किताबें देखने के साथ ही सावित्री उसके बारे में भी पूछने लगी। लड़के का नाम बाबू था; वह सुबह स्कूल में पढ़ता था और शाम को ट्रेन में किताबें बेचता था। सावित्री ने उसे पुरानी किताब लौटा दी और आवरण

पृष्ठ पर आपस में चुंबन कर रहे युवक-युवती की तसवीरवाली किताब रख ली। उस लड़के को उसने दो दिन के बजाय दूसरे दिन आने को कहा। जब लड़के ने 'ठीक है मालकिन' कहा, तब सावित्री ने कहा कि उसे 'दीदी' कहकर बुलाए।

उस दिन वह लड़का अपने निर्धारित समय से बहुत पहले आ गया था। उसके स्कूल की छुट्टी थी, इसलिए वह एक ट्रेन पहले आ गया था। उस समय सावित्री अपने बाल संवार रही थी। जूड़ा बांधने तक वह लड़का सावित्री की ओर एकाग्रता से चुप-चाप देखता रहा। जूड़ा बांधने के बाद उसकी ओर देखकर सावित्री कुछ मुसकरायी और बोली—"आ, तेरे बाल संवार दूं!" अति आज्ञाकारी-सा बाबू उसके सामने आ बैठा, और सावित्री ने खूब प्यार से उसके बाल संवार दिए। उस दिन थैले की किताबें देखते वक्त सावित्री ने बाबू से पूछा—"तुमने ये सारी किताबें पढ़ी हैं?" लाज के मारे लड़के के चेहरे पर लालिमा उभर आयी और उसने सिर हिलाते हुए हामी भरी। सावित्री ने कुछ दिखावटी गुस्सा भरकर उससे कहा—"तुम्हें इस उम्र में ये किताबें नहीं पढ़नी चाहिए। पाठ्य-पुस्तकें पढ़ो!" लड़के ने फिर हामी भरी, लेकिन सावित्री की ओर दुबारा न देखते हुए थैलों में अपनी किताबें डालकर वहां से चला गया।

फिर किसी दिन सावित्री ने बाबू से कहा—"तुम अपनी पढ़ाई की किताबें लेकर आना, मैं पढ़ा दूंगी!" दूसरे दिन बाबू अपनी पुस्तकें लेकर आया और सावित्री उसे काफी देर तक पढ़ाती रही। इस तरह बाबू सावित्री के खूब करीब आ गया, और सावित्री हर रोज बाबू के आने की प्रतीक्षा करने लगी। अब वह बाबू के साथ काफी देर तक बातें करती रहती। इच्छा न होने पर कई बार वह बाबू से कोई किताब नहीं लेती थी। सच कहा जाए तो उन किताबों में बारंबार दुहराये जानेवाले पात्रों और पहले

Digitized by srujanika@gmail.com

से ही समझ में आनेवाली घटनाओं की धारा अब सावित्री को अच्छी नहीं लगती थी। बीच-बीच में यों ही दिखावटी नाराज़गी प्रकट करते हुए बाबू से कहा करती थी—"तुम्हें कोई और किताबें नहीं मिलतीं ?" या फिर कोई किताब उठाकर उसे दिखाते हुए पूछती—"यह किताब पढ़ी है तुमने ? तो फिर बताओ कि अपनी पत्नी को छोड़कर वह किसी और लड़की के साथ क्यों भाग गया ?" ऐसी स्थितियों में बाबू सिर झुकाये चुप रहता था, और कभी-कभी सावित्री उसका गाल दबाकर कहती—"मेरे कोई छोटा भाई नहीं है, समझे ?"

उस रोज सावित्री ने बाबू से कहा—"इस रेलवे-लाइन के उस पार क्या है, तुमने देखा है ? चलो, आज देखने चलें।" वह निकल ही रही थी, पर न जाने क्या सोचकर बोली—"मैं ज़रा साड़ी बदल लूं।" बहुत दिनों के बाद उसने बक्सा खोलकर अपनी रंगीन साड़ियां निकालीं और बोली—"तुम उस ओर मुंह करके बैठो; मैं साड़ी बदल लूं।" बाबू सिर झुकाए बैठा रहा और सावित्री काफी देर तक कई साड़ियां पहनती-उतारती रही, एवं आखिर में उसने एक साड़ी पसंद की। बहुत दिनों के बाद सावित्री बाबू के साथ बाहर घूमने निकली, और चलते-चलते वे लोग रेलवे-लाइन तक आ पहुंचे। पटरियों पर खड़ी होकर सावित्री ने दूसरी ओर निगाह डाली—उस पार रेलवे के कुछ क्वार्टर्स थे और इधर की तरफ एक खुला मैदान। काफी देर तक सावित्री ने दूर तक फैले खुले मैदान को देखा, फिर उसकी आंखें रेल की पटरियों पर लौट आयीं। अंत में लंबी सांस छोड़ते हुए सावित्री घर लौट आयी। बाबू चलने को हुआ ही था कि सावित्री ने कहा—"मैं साड़ी बदल लूं, फिर तुम्हारे लिए चाय बना दूंगी, पीकर जाना !"

बाबू हर रोज आता था। हालांकि वह बहुत कम बातें करता था, मगर सावित्री खुद बहुत-सी बातें करके उसके साथ काफी

Digitized by srujanika@gmail.com

समय गुज़ार देती थी। जिस दिन बाबू ने कहा कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है, सावित्री ने उसे जबर्दस्ती बिछौने पर लिटा दिया, उसका माथा दबा दिया और चाय के साथ दवा भी दी। एक दिन अचानक सावित्री ने बाबू से खड़े होने को कहा और काफी देर तक उसे ऊपर से नीचे तक देखने के बाद बोली—"इस बीच तुम काफी लंबे हो गए हो ! चलो, दीवार पर तुम्हारी ऊंचाई का निशान लगा लें।" दीवार के करीब बाबू को खड़ा करके उसके सिर के पास उसने पेन्सिल का निशान लगाया, और उस दिन की तारीख लिखने के बाद बोली—"साल भर बाद इसी तारीख को देखेंगे, तुम कितने बढ़ गए होगे।"

एक दिन जब बाबू नहीं आया तो सावित्री खूब अन्यमनस्क रही। दूसरे दिन जब वह आया तो उसने उसकी सारी किताबें फैलाकर देखीं, और अपनी कही हुई किताब न लाने की वजह से उसने बाबू को खूब डांट पिलायी। लेकिन जब बाबू की आंखों में आंसू भर आए, तो वह उसे गले से लगाकर खूब रोयी और बोली—"तू मेरा छोटा भाई है ना !"

आजकल सावित्री का मिज़ाज ठीक नहीं रहता था। बीच-बीच में वह छोटी-छोटी बातों पर खीझ उठती थी एवं अधिकांश समय बिछौने पर लेटी रहती थी। हालांकि वह नियमित पूजा-पाठ किया करती थी, लेकिन उसमें भी मानो उसका मन नहीं लगता था। किंतु शाम को ट्रेन के समय वह जरूर उठ जाती थी और बाबू के आने की राह देखती थी। यह उसकी रोजाना की आदत-सी बन गयी थी। उसे बिछौने पर लेटे देखकर एक दिन श्रीनिवास ने फिर उससे, अपना तबादला और कहीं करवा लेने के बारे में पूछा; लेकिन सावित्री ने फिर मना कर दिया। श्रीनिवास को एक दिन के लिए पास के किसी जंक्शन में काम से जाना था। अगले दिन सुबह जाकर रात को लौट आने पर, क्या

Digitized by srujanika@gmail.com

उसे किसी तरह की परेशानी होगी, इस बारे में पूछने पर सावित्री ने कहा—"नहीं, मुझे कोई परेशानी नहीं होगी!" उस दिन शाम को बाबू के आने पर सावित्री ने चुपचाप उससे कहा, "तुम कल सवेरे ही चले आना, यहीं खाना खाना! ये घर में नहीं होंगे; हम खूब दूर चलेंगे घूमने।"

दूसरे दिन सुबह श्रीनिवास अपने काम से चला गया और कह गया कि रात देर से लौटेगा। सवेरे नहा-धोकर सावित्री ने अच्छी-सी साड़ी पहनी और सुबह की ट्रेन से बाबू के आने की प्रतीक्षा करने लगी। ट्रेन चली जाने के बाद, काफी देर तक खिड़की के पास खड़ी हो सावित्री बाहर की ओर ताकती रही; लेकिन बाबू नहीं आया। सारा दिन इसी तरह वहीं खड़ी होकर उसने सभी गाड़ियों को देखा, परंतु शाम की गाड़ी से भी बाबू नहीं आया। सांझ ढल जाने पर सावित्री ने अपनी अच्छी साड़ी उतारकर रख दी और बगैर कुछ खाये-पिये बिछौने पर लेट गई। काफी रात गये जब श्रीनिवास लौटा, तब भी सावित्री उससे बिना कुछ बोले लेटी रही।

अगले दिन भी खिड़की के पास खड़े-खड़े उसने बाबू का इंतज़ार किया, किंतु बाबू नहीं आया। दूसरे दिन सावित्री को लगने लगा कि अब बाबू नहीं आएगा। उस रोज उसकी तबीयत ठीक नहीं थी, इसलिए वह सवेरे बिछौने से नहीं उठी। स्टेशन जाने से पहले श्रीनिवास ने उससे पूछा—"तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है क्या? दवा ले आऊं?" लेकिन सावित्री ने जवाब दिया—"नहीं, तबीयत खुद-बखुद ठीक हो जाएगी।" और जब श्रीनिवास ने बाहर जाने के लिए किवाड़ खोले, तब सावित्री ने कहा—"जाते समय खिड़की बंद करते जाना!"

Digitized by srujanika@gmail.com

वापसी

साथ सफर कर रहे डिब्बे के यात्रियों पर से अपनी नज़र हटाकर मधुवन ट्रेन की खिड़की से बाहर की ओर देखने लगा, और एकाएक अपने बचपन में खो गया। विपरीत दिशा में तेज़ी से दौड़ रहे बिजली के खंभों, पेड़-पौधों, छुटपुट बस्तियों एवं कभी-कभार छोटे-छोटे शहरों और बाजारों ने अनेक रहस्यों से भरकर उसके मन की गहराइयों को हल्के-से छू दिया। भीड़ में पिता की अंगुली से उसका नन्हा-सा हाथ छूट गया, और वह दीर्घकाय लोगों के पैरों के जंगल में अपने पिता को ढूंढ़ने लगा। इतने में प्लेटफॉर्म कुछ कांपने लगा, भयावनी-सी आवाज़ करती हुई ट्रेन आ पहुंची, और मधुवन के पैर के नीचे से जमीन खिसक गई। ट्रेन ठहरने के बाद जब सारा माहौल फिर व्यवस्थित हो गया, तब जाकर मधुवन को होश आया। उसके पिता ने उसका हाथ थाम लिया, एवं बगल में बैठे सज्जन ने मधुवन के कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा—"आपके पास माचिस है ?"

उस सज्जन की ओर माचिस बढ़ाते हुए मधुवन ने अन्यमनस्क हो, अपनी जेब से सिगरेट का पैकेट निकालकर उसमें से एक सिगरेट निकाली। किसी पूर्वनिर्धारित प्रतिक्रिया की तरह हामी की उम्मीद से उसकी आंखें सुरमा की आंखों से जा मिलीं। मगर मनाही की कई लाल बत्तियों से दपदपाती सुरमा की आंखें उस

Digitized by srujanika@gmail.com

वक्त उसकी अंगुलियों के बीच दबी सिगरेट पर थीं। सिगरेट को पैकेट में और पैकट को पुन: जेब में रखकर मधुवन ने फिर सुरमा की आंखों को देखा, जिनमें एक अजीब-सी खामोशी और सिगरेट पीने की इच्छा प्रकट करने की गुस्ताखी के लिए सज़ा का निर्देश था। उसका कलेजा धड़कने लगा, एवं अपनी लाख कोशिश के बावजूद बाहर आ रही खांसी को वह रोक न सका।

मधुवन फिर बाहर की ओर देखने लगा। जहां सारा कुछ पीछे छूटता चला जा रहा था। ट्रेन हर पल मानो पीछे छोड़ आयी चीजों से अपनी दूरी को अधिक-से-अधिकतर करने को बाध्य थी, एवं उसकी प्रत्येक सीटी की चीत्कार उसकी विजय-घोषणा थी। मधुवन की इच्छा हुई कि वह भी खुशी से सीटी मारकर अपने पूर्वपरिचित चेहरों को खूब पीछे छोड़कर बचपन के सभी रास्तों को पार कर लेगा। पहले वह अपने पीछे छोड़ आए शहर, अर्थात् जहां उसने अंतिम तीन साल बिताए थे, को भूलने की कोशिश करने लगा। अपनी भ्रमणशील नौकरी के दौरान पहली बार उसने यह शहर नहीं छोड़ा था, लेकिन वह पहले सबसे निकटतम अतीत को अपने से अलग करना चाहता था।

मधुवन को उस दिन की याद आयी, जिस दिन उसने शांति के साथ पहली बार उस अपरिचित शहर में कदम रखा था···नहीं, फिर भूल गया। उस बार उसके साथ शांति नहीं, सुरमा थी। शांति तो चार साल पहले ही मर चुकी थी। शांति के साथ ट्रेन में बैठकर वह जहां गया था, वह दूसरा शहर था और यह बात कई साल पहले की थी। लेकिन मधुवन को लगा कि सुरमा के साथ ट्रेन में बैठकर किसी नये शहर में पहुंचना—किसी बीती घटना की महज़ एक पुनरावृत्ति थी, ग्रामोफोन—रिकॉर्ड की सुई कहीं एक जगह बार-बार फंस जाने की तरह। मानो समय मधुवन के लिए केवल पुनरावर्तन से भरपूर था, और जीवन कहीं बारंबार

Digitized by srujanika@gmail.com

पहुंचने का क्रम।

सुरमा को शांति कहकर बुलाने पर कई बार उसे अप्रिय परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था, क्योंकि इस तरह की घटना के बाद सुरमा उससे कन्नी काटने लगती थी। लेकिन मधुवन के मन में इसके लिए किसी तरह का पछतावा नहीं था। कारण, वह इसे स्वाभाविक मानता था। हालांकि रूप, रंग और व्यवहार में सुरमा शांति से काफी अलग थी; पर अपने साथ उसके संबंध को लेकर मधुवन दोनों में कोई अंतर नहीं कर पाता था। एक ही तरह के वैवाहिक विधि-विधान के बाद मधुवन ने दोनों को पाया था। प्रथम परिचय की दुविधापूर्ण हिचक, दो शरीरों का क्रमिक अनुसंधान और आपसी समझौते, एवं अंत में पारिवारिक जीवन के आनुषंगिक अनुभव मधुवन की जिंदगी में अपरिहार्यता लिये दो बार आये थे। खाते वक्त और अधिक खाने के लिए बाध्य करना, सिगरेट पीने की मनाही, बारिश के दिनों में छाता लेकर बाहर जाने का व्यर्थ उपदेश, और इनसे परे संतानहीनता से उत्पन्न विषाद की अभिव्यक्ति, सब में सुरमा शांति का प्रतिबिंब थी।

ठीक उसी तरह की पुनरावृत्ति थी, मधुवन की नौकरी में—बैंक की एक शाखा से दूसरी शाखा में एवं एक शहर के दफ्तर से दूसरे शहर के दफ्तर में। एक-सी संख्याओं के जोड़, घटाव और सांख्यिकी सूची के तय विधि-विधान थे। क्रॉसवर्ड-पज़ल में लीन, सिगार पी रहे हाक़िम और सिगरेट को हाथ न लगानेवाले, गुलाब के शौकीन हाक़िम में कोई भी अन्तर नहीं था—एक-सा रिश्ता, अपनापन और व्यवहार। मधुवन के लिए पूरी नौकरी किसी परिवर्तनरहित दिन की पुनरावृत्ति थी। दस से पांच तक, दोपहर का अवकाश, इन और आउट ट्रे, बॉस के केबिन में कभी-कभार बुलावा, फिर सबको एक सूत्र में गूंथ रहे रुपया-पैसा, दशमलव

Digitized by srujanika@gmail.com

चिह्न, सैकड़ा, हजार, दस हजार, लाख, गिनती की अचूक संख्याएं···

शाम की आखिरी रोशनी की ओर से मुंह फेरकर मधुवन ने कंपार्टमेंट में अपनी निगाह दौड़ायी। किसी अज्ञात भय से उसका अन्तस सिहर उठा, क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था, जैसे वहां के सभी चेहरों से वह काफी अरसे से परिचित था। उसे एक और अनुभव याद आया—नये शहर में रहने को मकान ढूंढ़ते समय जब किसी वयस्क महिला ने आकर किवाड़ खोला, तब उसे ऐसा लगा, जैसेकि उस महिला को वह पहले से ही जानता था। अन्दर प्रवेश करते ही उसे ऐसा लगने लगा कि उस मकान के प्रत्येक कमरे और हर चीज से वह पहले से ही अच्छी तरह वाक़िफ है; जैसे इस मकान में पहले उसने चहलकदमी की है अथवा इसे उसने सपने में देखा है। सारा मकान घूमकर देखने से पहले ही मधुवन जानता था कि कौन-सा कमरा कहां है, एवं छोटी सीढ़ियों से होकर वह ऊपरी मंज़िल में ठीक किस जगह पहुंचेगा। इस समय ट्रेन के भरे डिब्बे में उसी तरह के एक और अनुभव ने उसे आ घेरा—इन्हीं यात्रियों के साथ पहले भी एक बार वह ठीक इसी तरह एक नये शहर जा रहा था। मधुवन जानता था कि अतीत की कोई वास्तविक अथवा सपने में घटी घटना उसके लिए पुनः घटित होने जा रही है। उसने खुद को असहाय-सा उस घटना की धारा में वह जाने दिया।

सामने बैठे व्यक्ति ने उसकी ओर समय-सारिणी बढ़ाते हुए कहा—"मुझे मेरा चश्मा नहीं मिल रहा है; आप ज़रा इसमें देखकर बताएं कि गाड़ी कितने बजे जंक्शन पर पहुंचेगी?" मधुवन पृष्ठ उलटने लगा, एवं पूर्वनिर्धारित-सा उस सज्जन ने कहा—"दस या ग्यारह नंबर टेबुल में होगा।" मधुवन ने उन्हें जंक्शन पहुंचने का समय बतलाया। अपनी कलाई-घड़ी देखते हुए उस व्यक्ति ने कहा—

Digitized by srujanika@gmail.com

"ट्रेन तीन घंटे विलंब से चल रही है।" इसके बाद उस व्यक्ति ने प्रत्याशित रूप से, फ्लास्क से गिलास में चाय डालकर मधुवन की ओर बढ़ा दी। मधुवन मना नहीं कर सका और मंत्रमुग्ध-सा उनके हाथ से गिलास ले लिया। ठीक इसी वक्त ट्रेन ने एकाएक जोर से झटका दिया, और चाय गिलास से उछलकर सुरमा की साड़ी पर जा गिरी। गुस्से से मुंह बनाते हुए वह उठ खड़ी हुई और प्रसाधन कक्ष की ओर चली गयी— ठीक पहले की तरह।

मधुवन कुछ डर-सा गया और उसे अपने पिता की बात याद आ गयी। पिता काफी पहले मर चुके थे, लेकिन अपनी सभी असहाय घड़ियों में उसे सबसे पहले उनकी ही याद आती थी। उसे ऐसा लगता था, मानो उसकी हर समस्या का हल उसके पिता सुझा देंगे और उसे हर संकट से बचा लेंगे। बचपन में भगवान के बारे में सुनने के बाद, मधुवन भगवान को भी अपने पिता की तरह ही कोई असीम शक्तिशाली व्यक्ति समझने लगा था। मधुवन की उम्र बढ़ने के साथ-साथ हालांकि पिता उसके लिए क्रमशः अपनी सारी शक्ति और सामर्थ्य खो चुके थे, फिर भी वह उन्हीं को याद करता था। इस समय पिता के बदन पर सफेद धोती, कंधे पर चादर और पैरों में खड़ाऊं थे। वे खूब प्रसन्न दीख रहे थे और मधुवन की ओर आशीर्वाद देने की मुद्रा में देख रहे थे।

इस वक्त बाहर अंधेरे का साम्राज्य फैला हुआ था और डिब्बे के अन्दर बत्तियां जल रही थीं। खिड़की के कांच में अन्दर का सब कुछ प्रतिबिंबित होकर ट्रेन के बाहर एक परिचित हालांकि रहस्यमय वातावरण पैदा कर रहा था। सुरमा आंख मूंदकर किसी अपरिचित सज्जन के कंधे पर सिर रखकर सो गयी थी। ट्रेन हिचकोले लेती एक निर्धारित गति से चली जा रही थी और डिब्बे में एकदम खामोशी थी। खिड़की के कांच के पास सिर

Digitized by srujanika@gmail.com

ले जाकर मधुवन ने बाहर की ओर देखा, बाहर घटाटोप अन्धेरे के अलावा और कुछ भी नहीं था।

नये शहर में पहुंचने की थोड़ी भी उत्कंठा मधुवन में नहीं थी, क्योंकि वह जानता था कि वहां किस तरह का अतीत उसकी प्रतीक्षा कर रहा होगा। ट्रेन की खिड़की से कई साल बाद मधुवन ने जिस घर को पुनः देखा था, उसके बारे में वह सोचने लगा—पूरा घर अन्धेरे में डूबा हुआ था, और उसकी एकमात्र प्रकाश-युक्त खिड़की पर एक महिला खड़ी थी। मधुवन जानता था कि यही घर उसका लक्ष्यस्थल है। उसने अपने पिता को याद किया और अपने थके हुए शरीर को नींद के ऐसे आश्रयस्थल को सौंप दिया, जो गर्भाशय की तरह अन्धकारमय लेकिन अशेष शांति और आश्वासन से भरपूर था।

Digitized by srujanika@gmail.com

जीवन-मुक्ति

जिस रोज सुधीर खाना खाये बगैर दफ्तर चला गया, सास-ससुर इस नतीजे पर पहुंचे कि अनुसूया को अब जिंदा रहने का कोई हक नहीं है। चाय पीते-पीते उन्होंने अनुसूया की हत्या की योजना बना डाली। उन दोनों के बीच मतभेद सिर्फ इस बात पर था कि सास विष का पक्षपात कर रही थी, जबकि ससुर किरासन डालकर जला डालने को अधिक सुरक्षित समझ रहा था। इस योजना में अपनी लड़की को शामिल करें या न करें, इस बारे में भी उनमें एकमत नहीं था।

ससुर जो कि अवकाशप्राप्त छोटा सरकारी नौकर था, अब पूरी तरह सुस्ती भरी जिंदगी बिता रहा था, एवं अधिक अर्थ-उपार्जन के विभिन्न उपाय सोचा करता था। सारी जिंदगी दफ्तर के नियम-कानून में ही व्यतीत होने की वजह से इस बारे में उसका ज्ञान अति सीमित था, एवं अपने रिश्तेदारों के असीम अर्थ-लाभ का कोई अन्य आधार ढूंढ़ पाने में असमर्थ था। नौकरी के दिनों में वह खूब ईमानदार था, एवं रिश्वत पर विश्वास नहीं करता था। किंतु सुधीर की शादी के वक्त वह अनुसूया के बाप का हर तरह से शोषण करने में हिचकिचाया नहीं था।

हालांकि अनुसूया नौकरी करती थी और घर चलाने में बाप की मदद करती थी; फिर भी बढ़ती उम्र की वजह से, उसकी

Digitized by srujanika@gmail.com

शादी करके किस तरह घर से विदा किया जाए, इसी बात को लेकर उसका बाप हर वक्त चिंतित रहता था। इसके अलावा, अनुसूया के दफ्तर का दूसरी जाति का लड़का उससे बीच-बीच में मिलने आता था, यह भी,उसके बाप को पसन्द नहीं था। इसलिए दूल्हा ढूंढ़ने की अनेक दुर्गम राहों से गुजरते हुए अनुसूया का पिता सुधीर के पिता के पास जा पहुंचा। उसकी पहली बात-चीत खूब संतोषजनक थी किंतु उसके बाद के सभी साक्षात्कारों में सुधीर का पिता एक नई मांग थोप देता था। यह अनुसूया के पिता के आर्थिक सामर्थ्य की क्रमिक परीक्षा थी। अंत में जिस रोज स्कूटर की बात आयी, अनुसूया के बाप ने समझ लिया कि वह हार गया।

उसने अपने बड़े लड़के को याद किया, जो व्यापार करता था एवं शादी के बाद उसी शहर में कहीं अलग रहता था। काफी दुविधा के बाद वह उसके पास गया और वर-पक्ष की इस अतार्किक मांग के बारे में उससे कहा। वह सोचता था कि बेटा खुद-ब-खुद सहायता करने की पहल करेगा एवं बहन की शादी धूमधाम से करवाने में सहायक होगा। मगर सब कुछ सुनने के बाद बेटे ने दहेज प्रथा के खिलाफ एक धधकता हुआ भाषण देते हुए राय दी कि भले ही लड़की अविवाहित रह जाए, इस तरह की मांग स्वीकार करना पूर्णत: अनुचित है।

हताश होकर घर लौटते समय अनुसूया के बाप ने सोचा कि इस रिश्ते को भूलकर कहीं और कोशिश करनी चाहिए। लेकिन घर पहुंचते ही दुर्भाग्यवश उसने अन्दर से अनुसूया के उसी दोस्त को निकलते देखा। अंदर जाकर घर की अनेक आर्थिक जिम्मेदारियां संभालने वाली लड़की को डांटने का अवकाश न पाकर अनुसूया के बाप ने पुन: उसकी शादी के बारे में सोचा, और उसी पल सीधे सुधीर के घर गया। उसने सुधीर के बाप से स्कूटर देने की बात

Digitized by srujanika@gmail.com

अनिश्चित रूप से कही—"मेरा बेटा इतना बड़ा व्यापार करता है, क्या मैं एक स्कूटर नहीं दे सकूंगा ?"

बस, इसी बात पर शादी तय हो गयी। मेल न खाने वाली कुंडलियां तुरंत मिल गयीं और कुछ ही दिनों के अंदर तिथि भी निश्चित हो गई। अनुसूया की पासबुक से रुपया निकालकर विवाह का सामान खरीदा गया। विवाह के दिन लोगों को दिखलाने के लिए दहेज का सारा सामान एक जगह सजाकर रखा गया। सामान देखकर आमंत्रित अतिथियों ने अपनी-अपनी राय व्यक्त की। स्कूटर इतनी जल्दी नहीं मिल सकता, इस बहाने अनुसूया के बाप ने दहेज़ के सामान के साथ स्कूटर नहीं दिया। लेकिन एक चिट में स्कूटर और उसका दाम लिखकर स्टैनलेस-स्टील के बर्तनों और गहनों के डिब्बों के बीच एक विशेष स्थान पर रख दिया। अनुसूया का बाप भी अपने बेटे की तरह दहेज-प्रथा का पूर्ण विरोधी था, एवं विवाह के बाद स्कूटर देने का कोई विचार उसके मन में नहीं था। कागज के एक टुकड़े से वर-पक्ष को चकमा देने में कामयाब होने पर वह मन-ही-मन खुश था। वह कागज ही इस समय वर-पक्ष के संतोष तथा अतिथियों के मनोरंजन का कारण बना हुआ था।

उसके बाप को इस बात की उम्मीद नहीं थी कि अनुसूया विवाह के लिए इतनी जल्दी तैयार हो जाएगी। उसे इस बात की आशंका भी थी कि विवाह के समय अनुसूया का वह दोस्त कोई-न-कोई अड़चन डालेगा। लेकिन अनुसूया समझदार थी और अपना भला-बुरा अच्छी तरह समझती थी। वह इस बात को भली-भांति जानने लगी थी कि उम्र बढ़ने के साथ-साथ वह इस घर की एक अनावश्यक वस्तु हो गयी है। इस घर में रहना उसके मां-बाप पर बोझ स्वरूप था; इस घर से निकलकर वह उन्हें चैन से रहने देना चाहती थी। अनुसूया को यह भी मालूम था कि

Digitized by srujanika@gmail.com

उसका दोस्त, जो उसे दर्जनों प्रेमपत्र लिखा करता था और बात-बात में रोमियो-जूलियट आदि के अमर प्रेम का उदाहरण दिया करता था, वास्तव में एक कमजोर, डरपोक, और चंचलमति का युवक था। इतने दिनों के परिचय के बावजूद उसने अनुसूया से कभी शादी की बात नहीं छेड़ी थी; बल्कि जब अनुसूया ने उससे अपनी शादी पक्की होने की बात कही तो वह खूब आश्वस्त दीख रहा था।

शादी पक्की हो जाने के बाद अनुसूया ने दफ्तर से छुट्टी ले ली, सारे प्रेमपत्रों को जला डाला एवं अपने युवा दोस्त से भी मिलने को मना कर दिया। जब सुधीर उसे देखने आया, तो अति संयतता से अपने को संवारकर अनुसूया ने उसे चाय दी, तथा सिर पर पल्लू डालकर सुधीर के माता-पिता के विभिन्न अप्रासंगिक प्रश्नों का खूब विनयपूर्वक जवाब दिया। सुधीर की सूरत और व्यक्तित्व को लेकर उसमें कोई कौतूहल नहीं था, क्योंकि अपनी बढ़ती हुई उम्र के साथ उसने इस संबंध को संपूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया था। शादी की सारी रश्मों को भी अनुसूया ने सरलता से निबाह लिया, एवं शादी के बाद सुधीर के घर जाकर उसके परिवार को अपना बनाने का प्रयास करने लगी।

शादी के बाद के कुछ दिन खूब अच्छी तरह बीते। सास-ससुर अनुसूया के प्रति उदार जान पड़ते थे एवं सुधीर की बहन, जिसने अभी कॉलेज की पढ़ाई शुरू की थी, अनुसूया को अपनी सहेली बनाने की कोशिश करती थी। अनुसूया ने बेहिचक अपने पति के व्यक्तित्व, व्यवहार, आर्थिक और पारिवारिक स्थिति को अपना लिया था; यहां तक कि सुधीर के साथ अपने शारीरिक संबंध को भी उसने एक कर्त्तव्य समझकर स्वीकार लिया था। उसने दफ्तर से लंबी छुट्टी ले रखी थी, इसलिए घर की देखभाल करने को उसके पास पर्याप्त समय था। कुछ ही दिनों में इस निम्न-मध्यम-

Digitized by srujanika@gmail.com

वर्गीय परिवार की संपूर्ण सांसारिक जिम्मेदारी उसने संभाल ली। अनुसूया को पूरा विश्वास था कि वह अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह निभा लेगी।

छुट्टियां खत्म होने पर जब सुधीर दफ्तर जाने लगा और उसकी ननद का कॉलेज भी खुल गया, तब अनुसूया अपनी जिम्मेदारी की कठिनाइयों के प्रति सजग हुई। अनुसूया की सास, जिसने अब तक घर का सारा दायित्व संभाल रखा था, यकायक अपने आपको पूरी तरह रिटायर करने के साथ-साथ अनुसूया की गति-विधियों पर नजर रखने लगी। अब वह अनुसूया के हरेक काम में मीन-मेख निकालती और उसकी भर्त्सना करने में भी नहीं हिचकिचाती। किंतु अनुसूया में अपार सहनशक्ति थी। उसने इस अशिक्षिता, नीच और झगड़ालू महिला के सभी जुल्म चुपचाप झेल लिये; यहां तक कि इस बारे में अपने पति से शिकायत करना उसने भी उचित नहीं समझा।

अधिक समस्या तब उत्पन्न हुई, जब अनुसूया की छुट्टियां खत्म हो गयीं और उसे दफ्तर जाना पड़ा। उसे उम्मीद थी कि उसकी सास घर के काम में थोड़ी-बहुत मदद तो करेगी ही; लेकिन सास अब यकायक सपूर्ण रूप से धार्मिक हो चुकी थी और सारी सुबह पूजा-पाठ में ही बिता देती। पूजा करने के साथ-साथ वह अनुसूया के काम का निरीक्षण भी करती जाती, और जैसे ही अनुसूया दफ्तर जाने को होती, वह चाय पीने की इच्छा प्रकट करती। वह खूब नरम स्वरों में चाय मांगती; अनुसूया अपनी कलाई-घड़ी देखती, कभी भी क्रोधित न होने का निर्णय लेती एवं रसोई में चाय बनाने चली जाती। सास के हाथों में चाय का प्याला देते वक्त अनुसूया यह बात अच्छी तरह समझती थी, कि सास उसकी असुविधा और घबराहट देखकर मन-ही-मन खुश होती है। बस छूट जाने की वजह से अनुसूया को रिक्शा लेकर

Digitized by srujanika@gmail.com

दफ्तर जाना पड़ता था। दफ्तर देर से पहुंचने पर उसे बहुत कुछ सुनना पड़ता था, किंतु अनुसूया दिल मजबूत करके सब सुन लेती थी।

शादी के बाद अनुसूया का बाप उसे देखने बीच-बीच में आया करता था। एक ही शहर में रहने की वज़ह से अनुसूया ने सोचा था कि उसका मायके से घनिष्ठ सम्बन्ध रहेगा; लेकिन उसका बाप आता तो उसके साथ एक-आध बातें करके उसके ससुर के साथ बातचीत करने में मशगूल हो जाता था। यहां तक कि अनुसूया को यह भी पता नहीं चल पाता था कि वह कब वहां से निकल गया। अनुसूया का भाई सिर्फ एक बार दो मिनट के लिए उससे मिलने आया था। सुधीर का मकान संकरी गली में था, जिससे गाड़ी मकान से काफी दूर खड़ी करके पैदल अन्दर आना पड़ता था और इसके लिए अनुसूया के भाई में धैर्य नहीं था। उसने सिर्फ एक बार अनुसूया का हालचाल पूछने के बाद उसके ससुर को नमस्कार करके अपना कर्त्तव्य समाप्त कर लिया और फिर दुबारा आना मुनासिब नहीं समझा। एक रोज जब उसकी सास किसी कारणवश अनुसूया को डांट रही थी, उस वक्त उसका बाप वहीं था। बाहर से ही उसके बाप ने यह सब सुना, एवं इस हालत में अंदर जाना और बिला-वज़ह बात बढ़ाना ठीक नहीं सोचकर चुपचाप वहां से लौट आया। अनुसूया ने महसूस किया कि इस घटना के बाद उसके बाप का आना काफी कम हो गया।

अपनी सुविधा-असुविधा को लेकर अनुसूया को सुधीर से कोई शिकायत नहीं थी। सुधीर भी उसी की तरह एक दफ्तर में मामूली-सी नौकरी करता था। वह अपनी आर्थिक जिम्मेदारी के प्रति काफी सचेत था एवं मां-बाप और बहन के अच्छे रहन-सहन के लिए प्रयत्नशील रहता था। अनुसूया की तनख्वाह इसमें काफी सहायक हुई इसके लिए सुधीर पहले ही कृतज्ञ था तथा अनुसूया को

Digitized by srujanika@gmail.com

सम्मान की दृष्टि से देखता था। किंतु वह काफ़ी विनम्र एवं शिष्ट प्रकृति का था एवं मां-बाप का आज्ञाकारी भी। घर में किसी तरह का कोई मनमुटाव होता, तो उसमें दिमाग न खपाकर वह चुपचाप घर से निकल जाता और देर से लौटता। अनुसूया और अपनी मां के बीच दीख रहे तनाव के बारे में वह सचेत था। यद्यपि वह जानता था कि इसमें अनुसूया का कोई दोष नहीं मगर वह इन बातों से अपने को दूर रखता था।

अनुसूया का पिता अब तक स्कूटर की बात भूल चुका था, किंतु उसका ससुर यह तय नहीं कर पा रहा था कि इस बारे में बात कैसे छेड़ी जाय। एक दिन सास को बेवक्त चाय देने के कारण उसकी बस छूट गयी, तो घर के बाहर रिक्शा तलाशते समय ससुर ने कहा—"अब स्कूटर की व्यवस्था करो! दफ्तर जाते वक्त तुम्हें सुधीर तुम्हारे दफ्तर छोड़ देगा।" सुधीर का दफ्तर उसके दफ्तर से भिन्न दिशा में था, और कर्तव्यनिष्ठ होने की वज़ह से वह खूब सवेरे दफ्तर निकल जाता था; अतएव इस बात की कहीं कोई गुंजाइश नहीं थी कि सुधीर उसे स्कूटर पर बैठाकर दफ्तर पहुंचा पाएगा। फिर भी ससुर की बात सुनकर उसने एक अर्थहीन हामी भर दी और उस ओर से गुजरते हुए एक रिक्शे को रोका। ससुर ने अपनी बात इतने में ही खत्म न करते हुए कहा—"काफी दिन हुए, तुम्हारे पिताजी नहीं आये। मुझमें तो आजकल इतनी दूर जाने की ताक़त ही नहीं है, उनको यहां आने के लिए एक पत्र लिख देना।" अनुसूया ने दुबारा 'हां' कहा, और दफ्तर पहुंचकर एक आज्ञाकारिणी बहू की तरह चिट्ठी लिख दी।

पत्र पाकर बाप समझ गया कि यह कोई शालीनतापूर्ण निमंत्रण नहीं, बल्कि स्कूटर के लिए तक़ाजा है। अब उसने सुधीर के घर जाना बिल्कुल बंद कर दिया। लेकिन ससुर भी हार माननेवाला नहीं था। वह अपनी शान और इज्ज़त ताक पर रखते

Digitized by srujanika@gmail.com

हुए, एक दिन सुबह-सुबह अनुसूया के पिता के घर जा पहुंचा। अनुसूया के बाप ने "आपने क्यों कष्ट किया"…जैसी बहुत-सी शिष्टतापूर्ण बातें कहकर चाय वगैरह पिलायी, एवं देश की परिस्थिति इत्यादि के बारे में आलोचना प्रारंभ कर दी। इस तरह काफी देर तक गपशप चलने की वजह से ससुर स्कूटर की बात नहीं उठा पाया। घर लौटते वक्त उसने इसके लिए पश्चात्ताप किया, और जब पत्नी ने उससे—"स्कूटर की बात कही या नहीं"—पूछा, तो उसने झूठे ही 'हां' कह दिया।

कई निमंत्रण देने के बावजूद जब अनुसूया का बाप उसके घर नहीं आया, तो लाचार होकर उसे पुनः उसके घर जाना पड़ा। इस बार वह खूब चालाक बनकर गया था। अनुसूया का बाप उसे देश की परिस्थिति इत्यादि बातों में उलझाए, इससे पहले ही उसने स्कूटर की बात छेड़ दी। बाप ने ससुर की बात का सीधा जवाब न देकर भूमिका बांधते हुए बतलाया, कि स्कूटर मिलने में किस तरह आठ साल लग जाते हैं और ब्लैक में लेने पर किस तरह सात हजार रुपये अधिक लगते हैं, साथ ही देश के आर्थिक संकट की ओर भी संकेत किया। उसके अनुसार देश की इन सभी परिस्थितियों के लिए पूंजीवादी राजनीति ही जिम्मेदार थी, इत्यादि। मगर ससुर घर से निकलने से पहले ही इन सब बातों में न बहकने की ठानकर आया था, और इस बार उसने बेरोक-टोक कहा—"देश की राजनीति जिस ओर भी जाए, हमें स्कूटर चाहिए! इतने दिन हो गए, और कब तक धोखा देते रहोगे?…"

अनुसूया के बाप ने इस बात का आखिरी निर्णय देने के उद्देश्य से कहा—"कौन किसे धोखा दे रहा है? कैसा स्कूटर?" ससुर ने अपनी जेब से उसकी लिखी हुई चिट निकालकर दिखलायी। चिट हाथ में लेते हुए बाप ने कहा—"मैंने कहा था कि स्कूटर देने की सामर्थ्य मुझमें है। मगर इसका मतलब यह तो

Digitized by srujanika@gmail.com

नहीं कि मेरे घर आकर मुझे धमकी देकर स्कूटर वसूलोगे।...

ससुर ने कहा—"हमने आपको भद्र व्यक्ति समझकर आपकी बातों पर विश्वास करके शादी कर ली, नहीं तो..." इस बार अनुसूया के पिता ने तैश में आकर कहा—"किसे भद्रता दिखला रहे हैं ?" यह कहते हुए उस कागज के टुकड़े को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और उन्हें ससुर के ऊपर फेंकते हुए कहा—"लो, अपना स्कूटर !" ससुर, जोकि दयालु था, कुछ कहे बगैर, गुस्से और अपमान से तमतमाया हुआ वहां से चला आया, और बाप ने समझा कि स्कूटरवाला अध्याय अब यहीं समाप्त हो गया।

पत्नी को झूठी बातें कहे या अपनी बेइज़्ज़ती का हू-बहू ब्यौरा दे, इस बारे में सोचने के बाद आख़िर में ससुर ने तय किया कि वह सच-सच बता देगा। उसकी बात सुनकर सास ने उसे 'नामर्द' इत्यादि कहकर बहुत-सी गालियां दीं और उसके बाद दोनों बैठकर अगली योजना के बारे में विचार करने लगे। इस सुनिश्चित योजना के मुताबिक अनुसूया को कुछ दिनों के लिए अपने बाप के घर घूम आने को कहा गया। अच्छी तरह न समझ पाने पर भी अनुसूया जानती थी कि इस बात के पीछे कोई-न-कोई राज जरूर है। उसने सुधीर को इस बारे में बताया और कब बाप के घर जाए – इस बारे में पूछा। सुधीर अपने मां-बांप के स्कूटर संबंधी षड्यंत्र के बारे में अप्रत्यक्ष रूप से अवगत था; उसने अनुसूया को उसी दिन शाम को चले जाने की सलाह दी।

जब अनुसूया अपने बाप के घर पहुंचकर रिक्शा से उतरी, तो उसका बाप सब कुछ साफ-साफ समझ गया एवं उससे बगैर कुछ पूछे, ससुराल से चली आने की वज़ह से उसे डांटा। रिक्शा-वाले को पैसा देते हुए अनुसूया ने चुपचाप डांट सह ली, और घर में घुसते ही कुछ आश्वासन पाने के उद्देश्य से सीधे मां के पास रसोई में चली गयी। मगर मां उसे देखते ही गुस्से से आग-बबूला

Digitized by srujanika@gmail.com

हो उठी और बोली कि इस नादानी की वजह से उसे सारी ज़िंदगी दुःख-ही-दुःख में बितानी पड़ेगी। अब अनुसूया समझ गयी कि पिता के घर आने के साथ दहेज के स्कूटर का एक अप्रत्यक्ष किंतु घनिष्ठ संबंध था, जिसके लिए मां-बाप उससे नाराज़ थे।

अगले दिन रविवार था। अपना मन स्थिर करके सोमवार को अनुसूया दफ्तर गयी। लंच की छुट्टी के समय उसने सुधीर को टेलीफ़ोन करके बात करने की कोशिश की, लेकिन जिस व्यक्ति ने रिसीवर उठाया था, वह सुधीर को बुलाने का कष्ट करने को तैयार नहीं था। दुबारा फोन करते समय फिर नंबर मिला ही नहीं, और खाने की छुट्टी का वक्त भी खत्म हो गया। शाम को दफ्तर की छुट्टी के बाद सुधीर को टेलीफोन पर पाना संभव न था और अनुसूया भी बस पकड़ने की जल्दी में थी, क्योंकि उस बस के निकल जाने पर दूसरी बस के लिए उसे घंटे-भर इंतजार करना पड़ता। जब तक दफ्तर में रहती थी, अनुसूया का मन ठीक रहता था, लेकिन घर पहुंचते ही उसे कई तरह की चिंताएं एक साथ आकर घेर लेतीं। दफ्तर ही उसके लिए आश्रय का एक द्वीप था, जहां काम में उलझकर वह खुद को सारे अरुचि-कर अनुभवों से स्वतंत्र रखती थी। लेकिन अगले दिन जब वह दफ्तर पहुंची तो पता चला कि उसके पारिवारिक जीवन की घटनाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण ब्योरा वहां पहुंच चुका है। उसकी सहेली ने कहा—"सुना है, तुम अपने सास-ससुर से झगड़ा करके पिता के घर भाग आयी हो?"

इसके बाद उसे दफ्तर भी पराया-सा लगने लगा। फाइल में गलती करने की वजह से बड़े बाबू से डांट खानी पड़ी और उस दिन लंच की छुट्टी के समय बड़े बाबू के टेलीफोन से सुधीर को फोन करने का साहस भी नहीं जुटा पायी। अब उसे ऐसा लगता था, मानो दफ्तर के लोग पीठ पीछे उसके बारे में बातें किया

Digitized by srujanika@gmail.com

करते थे, और उसकी चाल-चलन नापसंद करते थे। उसका वह पुराना दोस्त, जो शादी के बाद भी इर्द-गिर्द भटकने की काफी कोशिश किया करता था—लेकिन जिसे अनुसूया लिपट नहीं देती थी, भी आजकल दिखलाई नहीं देता था। एक दिन साहस करके दूसरी मंज़िल पर, जहां वह बैठता था, अनुसूया गयी। मगर उसे देखते ही उस दोस्त ने कहा—"तुम चलो, मैं आता हूं"···किंतु फिर उससे नहीं मिला।

अगले रविवार को अनुसूया का बाप उसे साथ लेकर ससुराल छोड़ने गया। घर के किवाड़ बंद थे। किवाड़ थोड़ा खुला छोड़कर ससुर बाहर आया और दरवाजे पर पहरेदार की तरह खड़ा हो गया। रास्ते पर खड़े पिता ने अनुसूया से कहा—"जाओ, तुम अंदर जाओ, बाहर हम लोग कुछ बातें करेंगे"···इस बार ससुर ने किवाड़ पूरी तरह बंद कर लिया और कहा—"अपने घर में तुमने मेरा जो अपमान किया था, पहले उस बात का फैसला हो जाए, उसके बाद बहू के घर में घुसने-न-घुसने की बात सोची जाएगी"···ससुर ने खूब चिल्लाकर यह बात कही थी, जिसकी वज़ह से टोला-पड़ोस के कुछ लोग वहां एकत्रित हो गए। हालांकि वे लोग उस घटना से पूर्णतः अनभिज्ञ थे, उन्होंने यकायक अंधे समर्थकों की तरह ससुर का पक्ष ले लिया। उनमें से एक ने कहा—"कुछ भी सही, आखिर है तो लड़के का बाप ही! हमारे टोले में यह सब नहीं चलेगा। लड़कीवाले आकर हमारे टोले का अपमान करके चले जाएं, यह बात हम नहीं सह सकते।"···उनकी ओर देखकर अनुसूया के बाप ने कहा—"पूरी बात ठीक से समझ तो लीजिए आपलोग।"···इस बार टोले के एक व्यक्ति ने बिगड़ते हुए कहा—"और क्या समझें? सीधी तरह यहां से चले जाओ!"

इस बीच और भी ढेर सारे लोग वहां जमा हो गए। आस-पास के मकानों की खिड़कियों से महिलाएं इस मनोरंजक दृश्य

Digitized by srujanika@gmail.com

का रसास्वादन करने में लीन थीं। बात आगे न बढ़ाते हुए अनुसूया के बाप ने कहा—"ठीक है! चलो, कचहरी में इस बात का फैसला हो जाएगा।" इतना कहकर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह गली के छोर की ओर चल पड़ा। अनुसूया ने पल-भर ससुर की ओर देखा और फिर सूटकेश उठाकर बाप के पीछे-पीछे चल पड़ी। कचहरी की बात सुनकर वे लोग काफी उत्तेजित हो उठे थे। गली के छोर पर पान-दुकान के पास रिक्शा मिल गया। बाप के साथ रिक्शा में बैठकर अनुसूया पुनः घर लौट आयी।

इस घटना की खबर भी बहुत जल्दी दफ्तर पहुंच गयी। दफ्तर के काम में गलती करने की वजह से अनुसूया को डांटते वक्त इस बार बड़े बाबू ने कहा—"घर पर लड़ाई-झगड़ा जो कुछ भी होता रहे, दफ्तर का काम ठीक से करना होगा। घर की बात घर पर, दफ्तर का काम दफ्तर में!" उसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में आज तक किसी ने कुछ कहने का साहस नहीं किया था, लेकिन इस समय बड़े बाबू की बात अनुसूया खामोशी से सुन गयी। यहां तक कि दफ्तर का वह अभद्र व्यक्ति, जो हर वक्त उसके पीछे लगा रहता था—किंतु उससे बात करने का साहस नहीं कर सकता था, आज अनुसूया की मेज़ के पास आकर उसके मुंह के पास अपना मुंह ले जाते हुए बोला—"किसी तरह की दिक्कत हो तो बताना। तुम मुझे भले ही नहीं मानती, पर मैं तो तुम्हारा अपना हूं!" अनुसूया ने इस धृष्टता को भी चुपचाप सह लिया। कुछ दिनों के बाद अनुसूया का बाप वाकई वकील से नोटिस लिखवाकर उसके दस्तख़त के लिए आ पहुंचा। उसमें दस्तख़त करने से पहले तो अनुसूया हिचकी, लेकिन बाप के मुंह की भाव-भंगिमा देखकर कागज़ को बगैर पढ़े ही दस्तख़त कर दिया। दफ्तर पहुंचकर उसी दिन सुधीर को एक लंबी चिट्ठी लिखी, और उससे प्रार्थना की कि वह आकर उसे लिवा ले जाए।

Digitized by srujanika@gmail.com

उसके बाद कई बार फोन करने पर जब सुधीर उसे फोन पर मिला तो उसने सिर्फ इतना कहकर रिसीवर रख दिया—"हां, मैं आऊंगा"···

अगले रविवार को खुद साथ न जाकर, अनुसूया के बाप ने उसे अकेली ससुराल भेज दिया। हाथ में सूटकेस लिये हुए जब अनुसूया ससुर के मकान के सामने उतरी, पास-पड़ोस के लोग उसे घेरकर खड़े हो गए। इस बार कुछ औरतें भी घर से बाहर गली में निकल आयी थीं। किसी पड़ोसी ने कहा—"अब यह बात सिर्फ दो परिवारों की नहीं है! तुम्हारे पिता ने हमारे पूरे टोले का अपमान किया है। अब तो उनके यहां आने पर ही मामले पर विचार होगा।"···औरतें आपस में हंस पड़ीं एवं उनमें से किसी ने अपनी टिप्पणी देते हुए कहा—"यह जमाना किस ओर जा रहा है?" सूटकेस लटकाये हुए अनुसूया गलियारे के छोर की दुकान तक गयी। उसके घर से भाग आने की बात गली के छोर की दुकान वाले तक को मालूम थी, क्योंकि इस बार उसे लौटते देखकर वह ठहाका लगाकर हंसा, एवं उसके सुनने न सुनने की परवाह किए बिना बोला, "अब तो इसी तरह आने-जाने का सिलसिला चलता रहेगा।" जो रिक्शावाला उसे वहां तक लाया था, उसने भी उसकी ओर तिरस्कार भरी नजरों से देखा एवं अनुसूया के रिक्शा में बैठते ही उसने जमीन पर थूक दिया।

अनुसूया समझ गयी कि पति का घर छोड़कर चली आने की वजह से सबकी नजर में वह चरित्रहीन बन गयी है। घर लौटने पर उसे फिर बाप से डांट खानी पड़ी। उसने सुधीर को और भी अनुनयपूर्वक पत्र लिखा। उस दिन दफ्तर के काम में उसका मन नहीं लगा। उसके दफ्तर की सहेली ने उसे काफी समझाया-बुझाया और टहलने के लिए बाहर लिवा गयी। बाहर आकर अनुसूया पहली बार फबक-फबककर रोयी और फिर आंसू पोंछ-

Digitized by srujanika@gmail.com

कर अपनी टेबुल पर लौट आयी। उसने खुली फाइल को बंद किया और न जाने क्या सोचकर पहली मंजिल पर बैठनेवाले पुराने दोस्त के पास गयी। अनुसूया को देखते ही वह उठकर बाहर चला आया और बोला—"यहां इतने सारे लोग बैठे हैं, दिखलाई नहीं देता? यहां क्यों आयी?" अनुसूया ने कहा, "मुझे तुमसे बहुत जरूरी काम है, दफ्तर के बाद मुझसे जरूर मिलना—तुम्हें मेरी कसम!"

दफ्तर के बाद सीधे बस-स्टॉप न जाकर अनुसूया बाहर खड़ी रही। काफी समय के बाद उसका वह दोस्त आया एवं बिना भूमिका बांधे बोला—"हां, क्या कहना चाहती हो? कहो"। अनुसूया ने कहा—"मैं इस वक्त बहुत बड़ी मुसीबत में हूं। तुम सहायता नहीं करोगे तो मैं मर जाऊंगी। तुम्हारे सिवाय मेरा और कोई नहीं है!" उस दोस्त ने नक्शेबाजी से मुसकराते हुए कहा—"शादी के समय तो तुम्हें मेरी याद नहीं आयी थी!" अनुसूया इस बात को लेकर ज्यादा हुज्जत करने की हालत में नहीं थी। उसने कहा—"बीती बातों को भूल जाओ। कम-से-कम आड़े वक्त पर तो मेरी मदद करो!" दोस्त ने कहा—"ठीक है, जो कहना चाहती हो, कहो।" अनुसूया ने कहा—"तुम किसी भी तरह से मेरे पति को मेरे पास लिवा लाओ।"···उसका दोस्त, जो अनुसूया के मुंह से फिर प्यार का निवेदन सुनने की आशा में था, यह बात सुनकर काफी निराश हुआ और "अच्छा ठीक है"—कहकर वहां से चला गया।

कुछ दिनों बाद मुकदमे पर बातचीत करने के लिए वकील ने उसे बुलवा भेजा। वकील के कमरे में बैठकर अनुसूया ने पहली बार अपने दस्तखत किए कागज को पढ़ा। दरखास्त की प्रत्येक पंक्ति झूठी थी। उसमें इस तरह की घटनाओं का ब्योरा था, जो न केवल झूठी थीं बल्कि अनुसूया की कल्पना से परे थीं। वकील

Digitized by srujanika@gmail.com

ने कहा—मुकदमे के दिन तुम्हें शपथ लेकर ये सारी बातें कहनी होंगी।" यंत्रचालित-सी अनुसूया ने सिर झुकाकर हामी भरी। इस बार वकील अपनी कुरसी से उठकर अनुसूया के पीछे आ खड़ा हुआ एवं दरखास्त उलटकर उस पंक्ति को दिखाया, जहां सुधीर के पौरुष के बारे में संदेह प्रकट किया गया था। अनुसूया ने उसे दुबारा पढ़ा और वकील के मुंह की ओर ताकने लगी। इस बार वकील उसके और करीब आ गया एवं उसके कंधे पर अपने हाथ का भार रखते हुए खूब धीमे स्वर में बोला—"कह सकोगी न ?" अनुसूया ने इस अश्लील अतिरेक को भी सह लिया और हामी भरकर वहां से चली आयी।

अनुसूया की खुशनसीबी थी कि उसे कचहरी नहीं जाना पड़ा, क्योंकि अब उसका बाप इस मुकदमे की निरर्थकता समझ चुका था। अब वकील भी ज्यादा पैसा लेने लगा था। अनुसूया का बाप किसी दूसरे वकील से मिलकर यह जान चुका था कि इस मुकदमे से कोई फायदा नहीं होगा। इसलिए वह अपनी इज्जत को ताक पर रखकर फिर से स्कूटर की बात सोचने लगा। एक दिन सुबह-सुबह अपने बड़े बेटे के पास जा पहुंचा। आधी बात सुनकर बेटे ने कहा—"मैंने पहले ही कहा था कि दहेजदारी में मत पड़ो !"···पिता ने कहा—"स्कूटर की बात भले ही छोड़ दे; तू जाकर उसके ससुर को थोड़ा-बहुत समझा तो दे"···बेटे ने कहा—"नहीं, उससे कोई फायदा नहीं; बल्कि उसे स्कूटर दे ही दो।"··· इससे आगे कुछ न बोलते हुए वह अंदर गया और स्कूटर का पैसा लाकर हाथ में थमा दिया।

जिस दिन स्कूटर खरीदकर लाया गया, सबने सोचा, चलो एक बला टली; और अनुसूया के चेहरे पर भी इतने दिनों वाद कुछ रौनक आयी। पहले किसी के हाथों स्कूटर ससुराल भिजवा दिया गया, और उसके दूसरे दिन अनुसूया को साथ लिवाकर

Digitized by srujanika@gmail.com

उसका बाप ससुराल जा पहुंचा। अनुसूया ने जमीन पर सिर टेककर ससुर को प्रणाम किया। ससुर ने उसके बाप को चाय पीने को कहा। सीधे रसोई में जाकर अनुसूया ने रसोई की जिम्मेदारी संभाली, मानो बीच में कोई रुकावट पड़ी ही नहीं। यहां तक कि रात को घर लौटने के बाद खा-पीकर सोने जाते वक्त सुधीर ने भी अनुसूया से, इतने दिनों की अनुपस्थिति को लेकर कोई चर्चा नहीं की। सिर्फ इतना भर कहा—"आज मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं लग रही है, जरा हाथ-पैर दबा दो।"···

अनुसूया ने समझा, फिर सब कुछ पहले की तरह हो जाएगा; किंतु ऐसा नहीं हुआ। उसके सास-ससुर उससे अब भी नाराज थे। अनुसूया की लाख कोशिश के बावजूद उससे वे अच्छी तरह बातचीत नहीं करते थे; बल्कि घर छोड़कर चली जाने की वजह से सास उसे बीच-बीच में परोक्ष रूप से ताने दिया करती थी। घर में अनुसूया की एकमात्र साथी थी—सुधीर की बहन। लेकिन वह भी अपनी पढ़ाई और यार-दोस्तों में इतनी मशगूल रहती थी कि अनुसूया के लिए उसके पास बहुत कम वक़्त निकल पाता था। एक दिन उसकी पढ़ाई की किताब में अनुसूया ने किसी का प्रेम-पत्र देखा। इस बारे में उससे पूछे या घर के अन्य लोगों से कह दे—इस बात को लेकर अनुसूया दो दिनों तक सोचती रही। अंत में उसने यह बात सुधीर से कह दी। सुधीर ने अपनी बहन को खूब डांट पिलायी, और उसी दिन से उस घर की एकमात्र साथी भी अनुसूया की दुश्मन बन गयी। अब वह अनुसूया की गलतियां ढूंढ़ने लगी और मां-बाप से उसकी शिकायत करने लगी। सास-ससुर को खुश रखने के लिए अनुसूया ने अपने मां-बाप से संबंध तोड़ लिया था, और अब सारे संसार में अकेली हो गयी।

इस तरह क्रमशः अनुसूया ने संकटपूर्ण दफ्तर और दुश्मन ससुराल की जिंदगी अपना ली। उसने सास का दुर्व्यवहार, ससुर

Digitized by srujanika@gmail.com

की कठोरता, पति की अनासक्ति और ननद की शत्रुता—सबसे समझौता कर लिया एवं जिंदगी के बीतते दिनों को मायूसी के साथ गिनने लगी। ऐसी दशा में उसे उस दिन राहत मिली, जिस दिन उसने जाना कि वह मां बननेवाली है। खुश होते हुए उसने यह बात सुधीर को बतलायी। सुधीर बाहर जाने को तैयार हो चुका था; अनुसूया की बात सुनकर उसके मुंह से—"ओह" के सिवाय और कुछ नहीं निकला। कुछ भी हो, अपनी शारीरिक अस्वस्थता, समय-असमय अस्पताल जाने का कष्ट, दफ्तर से छुट्टी मंजूर करवाने की दिक्कत इत्यादि के बीच अनुसूया अपने को खुश रखने की कोशिश करने लगी, एवं आने वाली संतान की प्रतीक्षा में अपने दु:ख भरे दिन गिनना भूल गयी। इस तरह की मानसिक स्थिति में अपनी सास भी उसे कुछ दयालु दिखने लगी।

लेकिन अनुसूया की बदनसीबी थी कि उसके लड़का न होकर लड़की हुई। अस्पताल में सारी रात उसकी देखभाल करनेवाली सास मुंह फेरकर घर चली गई। सुधीर जो स्वयं लड़का या लड़की होने के प्रति निरपेक्ष था, मां की नापसंद को सम्मान देते हुए बोला—"क्या अंत में लड़की ही पैदा की?" बदन से सटकर सोये बच्चे को देखकर अनुसया तय नहीं कर पायी कि वह खुश हो या दुखी। जब सब चले गए, वह दिल भरकर रोयी।

घर लौटने के बाद भी अनुसूया के दु:ख का अंत नहीं हुआ। उसकी बच्ची हर वक्त बीमार रहने लगी। छुट्टियां खत्म करके दो दिन दफ्तर जाने के बाद उसे फिर छुट्टी लेनी पड़ी। इस बार आधी तनख्वाह पर छुट्टी में थी, इसलिए घर की आय में बाधा पड़ी। आखिर में वही बच्ची उसकी सबसे बड़ी दुश्मन साबित हुई। वह रात-दिन रोया करती थी। उसकी वजह से रात में कोई चैन से सो नहीं पाता, और इसके लिए अनुसूया को ही दोषी ठहराया जाता।

Digitized by srujanika@gmail.com

बच्ची होने के बाद अनुसूया की तबियत भी खराब रहने लगी। सारी रात उनींदी और दिन-भर घर का कामकाज करने में व्यस्त रहने की वजह से वह बार-बार बीमार पड़ने लगी। फिर भी, बीच में कुछ दिनों के लिए वह दफ्तर गयी थी। दफ्तर से लौटने पर सास उलाहना-भरा चिट्ठा तैयार रखती थी। ननद को सारा दिन बच्चे की जिम्मेदारी संभालनी पड़ती थी, इसलिए वह भी अनुसूया पर नाराज रहती। अतएव अनुसूया ने और छुट्टियां ले लीं। इस बार की छुट्टियां बिना वेतन की थीं, यह बात भी घर में क्षोभ का कारण बनी हुई थी। इन्हीं दिनों घर बैठे रहने की वजह से अनुसूया पर एक अजीब-सी खिन्नता छायी रही। अब वह खड़ी होती तो उसके हाथ-पैर कांपने लगते, उसे काफी कमजोरी लगने लगी और जब कोई उसे बुलाता, वह डर से घबराने लगती थी। सिर्फ बच्ची के साथ जितना समय रहती, ठीक रहती थी। जब बच्ची मुसकराती तो वह अपना सारा गम भूलकर खुश हो जाती, और बच्ची को बेतहाशा चूमने लगती।

छः महीने पूरे भी नहीं हुए थे कि बच्ची मर गयी, और अनुसूया पागलों-सी हो गई। जब सास-ससुर ने उसे कुछ दिनों के लिए मायके हो आने को कहा तो उसने मना कर दिया। वह अधिकतर एक ही जगह बैठकर सामने की ओर एकटक देखती रहती, और अपनी बच्ची को याद करके कभी हंसती तो कभी रोने लगती। हालांकि ससुर उसे फिर से दफ्तर जाकर काम करने को कहना चाहता, लेकिन उसकी यह हालत देखकर कुछ कह नहीं पाता था। अनूसूया यंत्रचालित-सी घर का सारा कामकाज करती, किंतु अब वह बहुत-सी बातें भूल जाती थी। एवं सारी बातें ठीक से समझ पाने में असमर्थ थी। ननद ने उससे बातचीत करना बंद कर दिया था और जहां तक संभव होता, सुधीर भी उससे दूर ही रहा करता था।

Digitized by srujanika@gmail.com

जिस दिन अनुसूया रसोई में बैठी चूल्हे की ओर टकटकी बांधे देख रही थी और तरकारी जल गई, सास दौड़ती हुई आई और अनुसूया को धक्का देकर वहां से निकाल दिया। इस घटना के बाद सास को अनुसूया पर हाथ उठाने में कोई हिचक नहीं होती थी। ससुर भी पीछे न रहकर बीच-बीच में अनुसूया को बुरी तरह से गरियाने लगा था। गाली और मार खाकर अनुसूया डर से कांपने लगती एवं हरेक काम में गलती कर देती जो कि पुनः गाली और मार का कारण होती थी। अब अनुसूया सुधीर की ओर भी नहीं देखती थी और उससे दूर ही रहने की कोशिश किया करती।

उस दिन दफ्तर जाते समय जब सुधीर खाना खाने जा बैठा, अनुसूया ने कहा—"अभी रसोई में कुछ देर है।" सुधीर नाराज होते हुए बोला—"मेरे दफ्तर का समय हो गया है, मैं अब प्रतीक्षा नहीं कर सकता।" और चला गया। सास ने अनुसूया को खूब फटकारा, और इस घटना के बाद ही सास-ससुर एक साथ बैठकर अनसूया को मारने की योजना बनाने लगे। अंत में दोनों ने मिल-कर यह तय किया कि किरासन डालकर जला डालने की घटना को आत्महत्या का जामा पहना दिया जाएगा।

तबियत खराब होने की वजह से जिस दिन सुबह अनुसूया बिछौने से सही समय पर नहीं उठ सकी, उसी दिन को उन्होंने इस कार्य के लिए सही दिन मान लिया। सास उसके पास गयी और कपटभरे दिल से स्नेह उड़ेलते हुए, उसकी तबियत के बारे में पूछताछ की। उस दिन रसोई का काम सास ने खुद किया। लड़का दफ्तर और लड़की कॉलेज चले जाने के बाद सास ने अनुसूया को बिछौने से उठाकर खाना खा लेने को कहा। थकी-मांदी-सी अनुसूया खाने आ बैठी, किंतु कुछ खा न सकी। उसके खाने में मिली नींद की दवा व्यर्थ चली गयी— जानकर सास क्षुब्ध हुई।

Digitized by srujanika@gmail.com

अनुसूया को बिछौने पर लिटाकर नींद की दवा लायी और बड़े लाड़ से उसे खिला गयी। दवा खाकर अनुसूया ने पानी पिया और खाट पर लेटी-लेटी अपने बारे में सोचने लगी।

नींद की वजह से उसकी आंखें बंद होने लगी थीं; किंतु खुद को नींद से जबरन दूर रखते हुए वह सभी परिचितों के चेहरे याद करने लगी—मां, बाप, भाई, बड़े बाबू, पान-दुकानवाला, रिक्शावाला सभी उसकी आंखों के सामने तैरते नजर आ रहे थे। सास उसके कमरे में दो कनस्तर किरासन रख गयी। अनुसूया ने सुधीर और अपने दफ्तर के उस दोस्त को भी याद किया। सास ने उस कमरे से अपनी सभी जरूरी और कीमती चीजें निकाल ली। इस बार अनुसूया ने अपनी मरी हुई बच्ची को याद किया एवं एक अजीब-सी हंसी से उसका चेहरा कुछ चमक उठा। अब उस पर चादर ओढ़कर सास, ससुर को बुलाने कमरे से बाहर चली गयी।

अनुसूया बिछौने से उठी। इस वक्त उसके शरीर की सारी थकान, कमजोरी और निस्सहायता दूर हो चुकी थीं। और उसके चेहरे पर अथाह प्रसन्नता थी। वह अडिग पग रखते हुए कमरे के दरवाजे तक गयी और अंदर से किवाड़ बंद कर लिया। आईने के पास जाकर सिर के बाल संवारते हुए उसने अपने चेहरे की ओर देखा। इस वक्त उसकी आंखों में निर्णय की अजीब गहराई थी। वहां से हटकर उसने सारा किरासन बिछावन पर उड़ेल लिया। इसके बाद स्थिर और अविचलित हाथों से अपने पल्लू की छोर खोलकर माचिस निकाली। माचिस जलाते समय उसकी कृतसंकल्प अंगुलियों में लेशमात्र कंपन नहीं था।

Digitized by srujanika@gmail.com

निर्धारित स्थान

काफी देर तक इधर-उधर निगाह डालने के बाद, आखिर दूर कोने में पड़ी कुर्सी पर हरिराम जा बैठा। उसकी तरह और भी कई लोग उस कमरे में बैठे, साक्षात्कार के बुलावे की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी के चेहरे उद्वेगभरे थे एवं प्रतीक्षा की घड़ियां बिताने के लिए सभी आपस में एक-दूसरे के परिचय और सौजन्य का आदान-प्रदान करने में व्यस्त थे। सभी अपनी-अपनी सबसे कीमती पोशाक, व्यवहार और आचरण पहनकर आये हुए थे, एवं इस माहौल में हरिराम खुद को अलग-सा महसूस कर रहा था।

हरिराम जानता था कि अपनी लाख कोशिशों के बावजूद वह इनके समकक्ष नहीं हो पाया था। वह काला था और खुद को कुरूप मानता था। उसकी पोशाक, चाल-चलन, उच्चारण, सब मानो किसी छुटपन के परिचायक थे। उसने अपनी नीची जात की पैदाइश, दरिद्र पिता, अशिक्षित पत्नी और ईर्ष्यालु रिश्तेदारों को मन-ही-मन धिक्कारा और अपने छोटेपन के बोध से खुद को और भी संकुचित कर लिया।

खुद को इतनी हेय दृष्टि से देखने के पीछे हरिराम का कोई तर्क नहीं था, क्योंकि इस समय वह जिस स्तर पर पहुंचा था, वह उसके लिए गर्व की बात थी। वह अपने गांव और अपनी जात में सबसे अधिक पढ़ा-लिखा था। उसका बाप मोची था, एवं उसके

Digitized by srujanika@gmail.com

पूर्वजों में कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं था। हरिराम जानता था कि अपनी अदम्य निष्ठा एवं अध्यवसाय के बल पर ही वह अपने गांववालों और रिश्तेदारों से काफी ऊंचे आ सका था। लेकिन इस समय वह हतोत्साह से बोझिल था। उसकी इच्छा हुई कि काश, वह उस युवक की तरह हो पाता जिसने अपनी सभी कमियों को एक-एक गुण में बदल दिया था।

इस तरह के एक अन्य साक्षात्कार के लिए प्रतीक्षा करते वक्त वह युवक आ पहुंचा था। गजब की रौनक थी उसके चेहरे पर! हरिराम समेत और भी कई लोगों के आगे खड़े होकर सिगरेट का धुआं उगलते हुए उसने कहा था—"तुम लोग खामखाह यहां अपना समय जाया कर रहे हो; नौकरी तो मेरी है!" किसी ने पूछा—"मंत्री के आदमी हो क्या?" "मुझमें खुद इतनी योग्यता है कि मुझे किसी सिफारिश की आवश्यकता नहीं!"—लड़के ने कहा। किसी ने व्यंग्य कसते हुए कहा—"तो फिर तुम हरिजन होगे!" इस कथन से हरिराम के दिल को एकाएक ठेस पहुंची और उसकी धड़कनें तेजी से उठने-गिरने लगीं। लेकिन उस युवक ने बेहिचक कहा—"हां, किंतु मैंने दरखास्त में साफ-साफ लिख दिया है कि अपनी नीची जाति के लिए मैं किसी तरह की रियायत नहीं चाहता। मैं अपनी काबिलियत पर ही चुना जाऊंगा!" कुछ देर तक वह चुप रहा। फिर सिगरेट का धुआं उड़ाता हुआ, सभी की ओर अवहेलना भरी नजरों से देखते हुए हंसा और बोला—"मेरे पिता सफाई का काम करते हैं। 'सफाईवाला' एक भद्र शब्द मात्र है। वास्तविक नाम है मेहतर! मेरी मां भी मेहतरानी है···"

हरिराम जानता था कि वह कभी भी उस लड़के-जैसा नहीं बन सकता। नीच कुल में जन्म लेने पर गर्व करने की बात तो दरकिनार, यह बात किसी से कहते भी वह अपने में सिमट जाता था। उसने सोचा—शहर से दूर गांव के जाति-पांतिपूर्ण माहौल

Digitized by srujanika@gmail.com

में बढ़ना ही उसके संकुचित होने का कारण था। उसे अपने बचपन की बात याद आयी। हालांकि वह बचपन में पढ़ाई में तेज था, फिर भी उसे दूसरे लड़कों से दूर और अलग बैठना पड़ता था। खाने की छुट्टी में भी वह दूसरे लड़कों से दूर-दूर रहा करता था, और छुट्टी होने पर सीधे घर लौटकर अपने बाप के काम में हाथ बंटाता था। यद्यपि उसका शिक्षक उसकी पढ़ाई पर खुश रहता था, फिर भी एक हरिजन लड़के को अच्छा पढ़ते देख संतुष्ट नहीं था।

उसके इलाके का सबसे धनी व्यक्ति उस गांव का खान-मालिक था, जिसे सभी सेठ कहते थे। वह किस जाति का था, इस बारे में ठीक-ठाक पता न होने पर भी सभी उसे ऊंची जाति में गिनते थे, एवं सेठ के लड़कों के ब्राह्मणत्व के दावे का भी कोई विरोध नहीं करता था। हरिराम को बचपन के उस दिन की याद आयी, जिस दिन अचानक बारिश होने पर स्कूल से दौड़ते हुए घर आते वक्त अनजाने ही वह सेठ के लड़के से टकरा गया और सेठ का लड़का नीचे गिर पड़ा। स्कूल के शिक्षक ने इस बात के लिए उसे पीटा भी था, और जब उसने घर जाकर यह बात अपने बाप से बतलायी, तो उसके बाप ने उसी पर गुस्सा किया। इसके बाद उसका बाप उसे साथ लेकर सेठ के घर जा पहुंचा, और वहां सबके सामने उसे पीटा। उस वक्त वह खूब रोया था और अपने पिता पर क्रोधित हो उठा था। किंतु आगे चलकर वह समझ गया था कि उसके बाप ने उसकी भलाई के लिए ही ऐसा किया था। अगर उसका बाप उसकी वह थोड़ी-सी पिटाई न करता, तो सेठ के नौकरों से उसे और अधिक मार खानी पड़ती।

हरिराम ने हाईस्कूल भी पास कर लिया। हालांकि अब वह देश की स्वाधीनता, अस्पृश्यता-निवारण आदि के बारे में कुछ-कुछ जानने लगा था, फिर भी उसे मालूम था कि गांव में इन बातों के कोई मायने नहीं हैं। उसका बाप अभी तक मोची का काम

Digitized by srujanika@gmail.com

करता था। उसकी आर्थिक स्थिति में कोई उन्नति नहीं हुई थी। अब तक उसकी जाति के लोग गांव के बाहर, झुके हुए छप्पर के घरों में दूसरों से अलग रहते थे। उसने जिस दिन मैट्रिक पास किया, उसी दिन उसका बाप उसे साथ लेकर सेठ के घर जा पहुंचा। सेठ अपने घर के बरामदे में खुले बदन बैठा था। हरिराम के बाप ने जमीन पर लेटकर उसे साष्टांग प्रणाम किया। बाप की देखा-देखी सफेद पैंट और कमीज को भूलकर हरिराम ने भी नीचे लेटकर प्रणाम किया। सेठ अपने थुल-थुल शरीर को पंखा झलते हुए, हरिराम के मैट्रिक पास होने की खबर सुनकर खुश हुआ और बोला—"स्साला समय ही पलट गया है! हम लोगों के लड़के पढ़ाई न करके घर में बैठते हैं। इधर मोची के लड़के ने मैट्रिक पास कर लिया"—यह बात सुनकर हरिराम के बाप ने पुन: हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोला—"हुजूर, इस लड़के का कोई इंतजाम कर दें।"

सेठ हरिराम को सिर से पैर तक एक बार देख गया। बाप ने उसे इशारा किया और हरिराम ने जमीन में नज़रें गड़ाकर एक बार फिर हाथ जोड़े। सेठ खूब प्रसन्न था। "क्या और पढ़ना चाहते हो?"– उसने पूछा। हरिराम ने सिर हिलाकर हांमी भरी। सेठ ने अपने मैनेजर को बुलाकर कहा—"यह मोची का लड़का माइनिंग-स्कूल में पढ़ेगा। इसके बाप को हर माह खर्च दे देना!" हरिराम के बाप ने पुन: जमीन पर लेटकर सेठ को प्रणाम किया, और इस तरह हरिराम ने आगे पढ़ाई की।

स्कूल-हॉस्टल में हरिराम अकेला 'अछूत' लड़का था। वह समय-समय के अपमान और यातनापूर्ण अनुभवों को भुला देना ही उचित समझता था। जहां तक संभव होता, वह दूसरे लड़कों से अलग रहता और अपनी पढ़ाई में मन लगाता। हालांकि वह पढ़ने में तेज नहीं था, फिर भी अपनी परीक्षाएं सही समय पर

Digitized by srujanika@gmail.com

पास कर लेता था। देखते-ही-देखते उसने माइनिंग-स्कूल की पढ़ाई भी खत्म कर ली। बाप-बेटा फिर सेठ के आगे हाथ जोड़कर जा खड़े हुए। उस वक्त सेठ बीमार था, लेकिन उन्हें देखकर वह खुश हुआ। हरिराम के बाप ने कहा—"आपकी कृपा से यह लड़का आदमी बना है! आप ही के पैसों से इसने पढ़ाई की है। अब इसे किसी काम पर लगा दीजिए। तनख़ाह भले न मिले, काम तो सीख जाएगा!"

सेठ ने कहा—"मेरे पैसे से इतने पढ़ाई की है, यह बात भूल जाओ। यदि उसे कहीं और नौकरी मिल रही हो तो जाकर करे। और यदि मेरे पास काम करने की बात है तो दैनिक मजदूरी के हिसाब से काम करेगा। जिस दिन काम होगा, उस दिन की मज़दूरी पाएगा, काम न होने पर मज़दूरी नहीं मिलेगी। सोच लो, जैसा तुम्हारा विचार बने…" हरिराम ने अपने बाप की ओर देखा; बाप ने कहा—"नहीं, वह आप ही के पास काम करेगा!" सेठ खुश हुआ और बोला—"कोई जबरदस्ती नहीं है, जैसी तुम्हारी इच्छा! मैं अच्छी मजदूरी दूंगा—रोजाना सात रुपये।"—बाप-बेटे ने उसे पुनः प्रणाम किया। सेठ ने मैनेजर को बुलाकर कहा—"इस मोची के लड़के के लिए बाहर एक कुर्सी डलवा दो।"

इस तरह उसने अपनी नौकरी की शुरुआत की। अछूत होने की वजह से वह अन्य अधिकारियों के साथ न बैठता था। हालांकि वह दूसरों से अधिक तनख़ाह पाता था, फिर भी सभी—यहां तक कि उसके अधीनस्थ कर्मचारी भी उसे हेय दृष्टि से देखते थे, और इसकी वज़ह से उसके काम में बाधाएं भी आती थीं। अब तक हरिराम को यह मालूम हो चुका था कि इतना पढ़-लिखकर भी वह अपनी जाति और परिवार के निम्न सामाजिक स्तर से ऊपर नहीं उठ सका था, एवं अपनी माइनिंग की पढ़ाई और काम के बावजूद वह वास्तव में मोची ही था।

Digitized by srujanika@gmail.com

उन हालात से छुटकारा पाने के लिए उसने घरेलू ढंग से पढ़ाई की और कुछ ही वर्षों में डिप्लोमा पाने में कामयाब हो गया। इसी बीच उसने एक अनपढ़ लड़की से विवाह कर लिया था, एवं उसके बच्चे भी एक अस्वस्थ और दरिद्रता-ग्रस्त माहौल में पल रहे थे। उसने सोचा था कि गांव के इस माहौल से निकल जाने पर वह अपने इस घुटनभरे जन्मजात नीच स्तर से छुटकारा पा जाएगा, इसलिए उसने तय किया कि वह रोज़ाना की मज़दूरी छोड़कर शहर जाकर कहीं नौकरी तलाशने की कोशिश करेगा।

लेकिन नौकरी इतनी आसानी से कहां मिलनेवाली थी! लगातार साक्षात्कार देने के बाद यह बात उसकी समझ में आ गयी कि यह व्यवस्था मात्र एक लोक-दिखावा है; क्योंकि नौकरी किसे देनी है, इस बारे में पहले ही से फैसला हो जाता था। साक्षात्कार के समय उसे कई व्यंग्यात्मक प्रश्नों का सामना करना पड़ता था। उसकी दैनिक मजदूरी की नौकरी के बारे में टीका-टिप्पणियां की जाती थीं और आखिर में उसका चुनाव नहीं होता था एवं वह सेठ के दफ्तर में लौट आता था। सेठ अच्छा आदमी था और उसके काम से संतुष्ट भी था। वह व्यंग्य कसते हुए सिर्फ इतना ही कहता था—"क्या फिर लौट आए ?" और मैनेजर उसके लिए फिर एक कुर्सी बाहर डलवा देता था।

इसी तरह कई साल गुज़र गए। हरिराम साक्षात्कारों से बार-बार निराश होकर पुनः बरामदे में पड़ी कुर्सी पर आकर बैठने लगता। उसकी उम्र बढ़ने लगी थी, एवं वह जानता था कि अब साक्षात्कार के लिए भी बुलावा नहीं आएगा। यह उसका आखिरी साक्षात्कार था। घर से निकलते वक्त जाने-अनजाने सभी देवी-देवताओं को प्रणाम करके, अपने बाप का आशीर्वाद लेकर वह आया था। यह अंतिम साक्षात्कार उसके लिए एक दूसरी तरह की ज़िंदगी का आखिरी प्रवेश-द्वार था।

Digitized by srujanika@gmail.com

प्रतीक्षा करते-करते जब वह पूरी तरह से थक चुका, तो अंदर जाने का बुलावा आया। साक्षात्कार-कक्ष का दरवाज़ा अंदर की ओर खुलेगा अथवा बाहर की ओर, अक्सर यही बात उसके लिए एक समस्या होती थी। खैर, वह अंदर पांच बुद्धिमान व्यक्तियों के बोर्ड के सामने जा खड़ा हुआ। उसे बैठने को कहने के बाद सवालों के तीर छूटने शुरू हो गए—उसके जन्म, पढ़ाई, बुद्धि और नौकरी की सूची तैयार करने के बाद अंत में वही अनिवार्य सवाल पूछा—"तुम इतने दिनों से दैनिक मज़दूरी क्यों कर रहे हो ? अच्छी नौकरी क्यों नहीं मिली ?" यद्यपि हरिराम को मालूम था कि यह सवाल उससे पूछा जाएगा, पर उसके लिए इस सवाल का जवाब दे पाना आसान नहीं था। उसने कहना प्रारंभ किया, "मेरा जन्म एक बहुत छोटे-से गांव में हुआ था। मैं एक नितांत गरीब हरिजन परिवार में पैदा हुआ था…"

इतना कहने के बाद उसने प्रश्नकर्ता की ओर देखा। वे कागज पर कुछ लिखने में व्यस्त थे। दो व्यक्ति आपस में कुछ बातचीत करने में मशगल थे। एक अपना पाईप साफ कर रहे थे। उसकी बात सुन रहे एकमात्र सज्जन अनमने-से सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"इतनी भूमिका बांधने की जरूरत नहीं। संक्षिप्त उत्तर दो !"

हरिराम ने उनकी ओर देखा। उस सज्जन के असह्य सवाल और गंभीर चेहरे ने उसे हतोत्साहित कर दिया। उसने खुद को अंदर-ही-अंदर और समेट लिया और बोला—"संक्षेप में कहा जाए…" इसके बाद वह खामोश हो गया। इतनी सारी बातें संक्षेप में कैसे कही जा सकती हैं। सदियों से हो रहे शोषण, कुसंस्कार, अत्याचार, दारिद्र्य, ऋग्वेद, ब्रह्मा के चरण, मनु, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गांधी, अस्पृश्यता-कानून, अंबेडकर, मंदिर-प्रवेश, चमारटोला, सनातन हिन्दूधर्म, छुआछूत, पंचामृत, जगत्-

Digitized by srujanika@gmail.com

गुरुशंकराचार्य, भंगी कॉलोनी, बैठी-बेगारी, सद्गति, मुक्तिमंडप, पंडित-सभा, श्री या चांडालिनी, स्थान-संरक्षण, अलग-कुआं, धर्मांतर, सामूहिक शुद्धि, हरिजन, बेलची ?···हरिराम खामोश था, वह समझ चुका था कि उसका चुनाव नहीं हो रहा है। अब उसका भविष्य निश्चित और निर्धारित था, जिसे वह साक्षात्कार-कक्ष में निर्वाक् बैठा साफ-साफ देख सकता था।

कक्ष का दरवाज़ा बाहर की ओर खुलता था, जिसे वह अनायास ही खोलकर बाहर चला आया। वहां से वह पैदल बस-स्टॉप गया, फिर बस से उतरकर दोपहर की ट्रेन ली। शाम को गांव की पगडंडी पकड़कर घर पहुंचा। घर में किसी से कोई बात-चीत किए बगैर उसने रात काट दी। सुबह सेठ के दरवाजे पर हाथ बांधकर जा खड़ा हुआ। सेठ को मरे काफी दिन हो चुके थे। उसका बेटा, जो अब सारा कारोबार संभाले हुए था, सफारी सूट पहनता था और सुसज्जित कमरे में बैठता था। हरिराम ने सकुचाते हुए उसे नमस्कार किया। उसे देखकर सेठ के बेटे ने हंसते हुए कहा—"क्यों, फिर लौट आए ?" और मैनेजर को बुला-कर कहा—"इस चमार के लिए बाहर कुर्सी डलवा दो !"

□

Digitized by srujanika@gmail.com

जे० पी० दास

जगन्नाथ प्रसाद दास उड़ीसा के जाने पहचाने लेखक हैं। कविता, नाटक और कहानियाँ सभी विधाओं में इन्हें समान रूप से सम्मान प्राप्त हुआ है। जहां इनकी रचनाओं का व्यापक रूप मे अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है, वहीं इनके नाटक देश के विभिन्न भागों में मंचित हुए हैं।

इनकी हिन्दी पुस्तकों में 'प्रथम पुरुष' व 'कई तरह के दिन' (कविता संग्रह) तथा 'सूर्यास्त' और 'सबसे नीचे का आदमी' (नाटक) पहले ही प्रसिद्ध हो चुके हैं। कहानियों के रूप में हिन्दी में यह उनकी सर्वप्रथम पुस्तक है।

कला-इतिहास में पी-एच० डी० प्राप्त श्री दास को उड़ीसा की चित्रकला पर प्रसिद्ध होमी भाभा पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

आथर्स गिल्ड के लिए श्री दास ने उड़िया कहानियों के अंग्रेजी अनुवाद का हाल ही में संपादन किया है।

उड़ीसा में 1936 में जन्मे श्री दास का निवास और कार्य-क्षेत्र अब दिल्ली बन गया है।

Digitized by srujanika@gmail.com